चौराहा



रमेश चन्द्र 'प्रेम'

किताब महल
इलाहाबाद
१९५६

प्रकाशक--किताब महल, इलाहाबाद।

मुद्रक – गुप्ता प्रिंटिंग प्रेस, २३ क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद।

१

सरिता के कूल पर एक बड़े से पत्थर पर बैठी निरुपमा शून्य होकर अपलक आकाश की ओर निहार रही थी । प्रकृति का सजीव यौवन मानों उसे प्रेरित नहीं कर सकेगा । लहरियों का विद्रोह मानों एक हास्यास्पद खेल बनकर उस के सम्मुख नाचता रह जायगा । दूर कहीं पर कोई धीमे, मधुर स्वर में बरसाती गीत गा रहा था, जो मैदानों को लाँघता हुआ उसके चारों ओर फैले अनन्त शून्य को भरने लगा था ।

परन्तु उन्माद मानों उन्माद बनना नहीं चाहता, एक पीड़ा मात्र रह जाना चाहता है !

निरुपमा शून्य होकर बैठी रही ।

जीवन की यह विचित्र दशा है, जब जीवन जीवन नहीं रहता, जीवन आँसू बन जाता है । आँसू भी वाष्प बनकर उड़ जाना चाहता है । और रह जाता है केवल शून्य ! अथाह-अमिट शून्य !

चन्द्रमा की धुँधली सी परछाईं क्षितिज के पीछे से एक झोंके सी निकलकर चारों ओर फैल गयी ! सन-सन करके कोई सिसक उठा । अन्धकार, शून्य, आँसू ! हृदय की धड़कन बन्द हुई जा रही है ! सरिता के विप्लव के रोर में समाई जा रही है । सृष्टि के पीछे से कोई गरज रहा है, यौवन, वासना, तृप्ति । अरे यह कैसी प्यास है ! कैसा उन्माद है ! गला घोंट दो इसका, कंठ इतना रुँध जाय कि शब्द फूट ही न सकें !

निरुपमा आतुर हो उठी ।

पानी का घड़ा औंधा होकर पास पड़ा रहा ! फुहारे "छप-छप" कर के गिरते रहे ! अँधेरा घुमड़ता रहा !

मन में घृणा उपजती है, मोह भी होता है, उपेक्षा भी और प्यार भी! परन्तु यह प्यास है जो बढ़ती ही जाती है होंठों से दो बूँद लगा लेने से और असह हो उठती है और संसार ठठाकर कह उठता है तेरा जीवन तृष्णा को फूँक देने में है, प्यास को होम कर देने में!

पत्थर मानों पत्थर रह जाना चाहता है, पिघल कर मोम बन जाना नहीं चाहता! हृदय की ज्वाला जला नहीं पाती और ठंडा कर देती है! तब बड़ा भय लगता है! मन सिहर उठता है!

यह अभिलाषा, तृष्णा, उन्माद! ओह, गला सूख रहा है! पानी सामने है परन्तु होंठों तक आ नहीं सकेगा, हाथ पकड़ कर प्याला कोई छीन लेगा! उसमें लड़ने के शक्ति नहीं है, वह छिछली है, आज वह विधवा है।

अभी तो केवल तीन ही वर्ष बीते हैं, जाने कितना दीर्घ जीवन सामने पड़ा है। राह धुँधली हो गई है! चिन्ह अदृश्य हो रहे हैं! तन जल रहा है, मन जल रहा है, यौवन जल रहा है! और एक लपट है जो बढ़ती चली जा रही है।

वे मधुर आलिंगनों के पुलकभरे चुम्बनों के दो माह! बस यहीं तक सीमित हैं सारे स्वप्न! जागृति से पहले ही स्वप्न टूट गये! रह गई केवल स्मृति, कसक बनकर, पीड़ा बनकर, जो जलन है, उसी को लेकर जीना है! उसी में तिल-तिल भर जल जाना है! तो क्या यही जीवन है, यही समाज है, यही सृष्टि है!

निरुपमा की आँखें बरसने लगीं।

संध्या के अँधियारे में असंख्य तारिकाएँ गगन के असीम विस्तार में, फैली हैं! उस दिन एक पुरुष संग था तो कैसा मधुर था इनका कलरव, कैसी सजीव थी इनकी मुस्कान! परन्तु आज वह पास नहीं है तो सहस्रों मील दूर तक वह भी सूना पड़ा है! अपना मन भी खाली है! प्रकृति का

मनहर संगीत आज दीनता का क्रंदन बन गया है।

बन्धन अब सहे नहीं जाते! शृंखलायें कठोर होकर बाहों में पड़ी हैं। निरुपमा एक बार पूर्ण शक्ति लगाकर उन्हें तोड़ डालना चाहती है! और चाहती है विद्रोह करना प्रलय का ताण्डव बनकर। एकबारगी हाहाकार कर उठना!

सहस्रों चित्र उसके सामने आ-आ कर खड़े हो जाते हैं। निरुपमा विभोर हो उठती है! सरसों फूली है! गहरे पीले दो पुष्प तोड़ कर किसी ने आनन्दातुर निरुपमा की लम्बी-लम्बी अलकों में लगा दिये! फिर आलिंगन-चुम्बन! स्वप्न टूट रहे हैं! टूट कर शून्य में समाये जा रहे हैं! मृत्यु का क्रंदन, हाहाकार, रुदन! और आज कुछ भी नहीं है! सब समाप्त हो गया है। रह गई है केवल पीड़ा। स्मृतियों की टीस! जो कभी भी मिट नहीं सकती! जो सदा हृदय को जलाती रहेगी! दाह होता रहेगा, वासनायें, अभिलाषायें होम होती रहेंगी! इच्छा के विरुद्ध भी जीते रहना होगा!

निरुपमा के मन में विचारों का तूफान-सा उठ खड़ा होता है, वह सोचती है कि क्या पुरुष के बिना नारी का कोई अस्तित्व ही नहीं, क्या उसकी अपनी कोई आकांक्षा नहीं? यह तो स्वार्थ है पुरुष का, जिसने समाज की कठोर जंजीरों का निर्माण कर नारी को चारों ओर से जकड़ लिया है। एक बार उन शृंखलाओं को तोड़ डालना होगा, तभी नारी स्वाभिमान से जी सकेगी, तभी वह शक्ति ग्रहण कर सकेगी!

कभी उसे लगता है मानों जितनी दूर तक दृष्टि जाती है सब शून्य हो गया है। किसी से भी किसी दिन मानों उस का कोई प्रयोजन नहीं था और लगता है जीवन की कुबेला में, उसकी अन्तिम सांसों तक कभी यह होगा भी नहीं।

संध्या के गहरे अँधेरे में उस एकाकी पत्थर पर बैठे-बैठे संज्ञाविहीन प्राण जब व्यथा से व्याकुल हो उठते हैं, तब कल्पना में निःशब्द पग-संचार करके कोई धीरे-धीरे बगल में आ बैठता है और उसके हृदय के सारे निगू



स्थान घेरने लगता है ! तब उसे बाँहों में बाँध लेने को निरुपमा की आतुर बाहें उठ जाती है और हृदय की अनन्त गहराइयों तक कोई गुदगुदा देता है ! अरे कैसी है यह रोमांचकारी, पुलकभरी सिहरन ! वह मुग्ध हो जाती है और स्वयं को खोकर घन्टों बैठी रहती है !

निरुपमा उठी और पानी से घड़ा भरने लगी। तभी बाँहें काँप गईं। अंग-अंग एक प्रतारणा से व्यथित हो उठा। निरुपमा फिर लौट कर पत्थर पर आ बैठी और शून्य की ओर आँखें गड़ाए देखती रही।

बहुत देर बाद एक बार कल्पना के स्वर ने उसे झकझोर कर जगा दिया। "यहाँ बैठी हो जीजी ! माँ घर पर कबसे तुम्हारी राह देख रही हैं !"

प्रतारणा से निरुपमा काँप उठी। कैसे सुखद स्वप्न में आज वह खो गई थी ! अरे, तो क्या स्वप्न भी उसके लिये वर्जित है। इस कल्पना ने आकर कैसी निष्ठुरता से उन्हें छिन्न-भिन्न कर डाला ! निरुपमा चीख उठी, "क्या अकेले भी पल भर नहीं बैठने दोगी कल्प ! तुम्हारे लिए ही पानी भरने आई थी, क्या उस के लिए भी लाञ्छन सहना पड़ेगा !"

कल्पना दयार्द्र हो उठी ! मन पीड़ा से भरने लगा। उसने स्नेह से कहा, "कैसी बातें करती हो जीजी ! इतनी देर से तुम लौटी नहीं, इसी से भय लगने लगा था।"

"सोचा होगा, मैं कहीं भाग जाऊँगी। भागकर कहींमर जाऊँगी। अच्छा तो होता ! मेरे न रहने से पृथ्वी सूनी तो न हो जाती !" निरुपमा और कट्ट हो गई।

तब विनीत होकर कल्पना ने कहा, "तुम तो तनिक सी ही बात पर रूठ जाती हो जीजी ! दो सप्ताह बाद आज ज्वर टूटा है, कितनी मलिन हो गई हो, तिस पर भी पानी भरने चली आई। आकर सारे वस्त्र भिगो डाले, यदि फिर ज्वर चढ़ आया तो व्यर्थ में ही क्या दुखी नहीं होगी।"

निरुपमा से सहा नहीं गया। उसने कठोर होकर कहा, "नित्य खाना बना-बनाकर तुम्हारा पेट भरा करती हूँ न, इसी से दो पल की पीड़ा भी असह्य हो

उठती है। दो दिन अपने हाथ से बनाया तो प्राण मुँह को आने लगे। इस अभागिन का दो पल मरने भी नहीं दोगी क्या कल्प।"

कल्पना की आखों के कोरों से दो बूँद आँसू झलककर बिखर पड़े। निरुपमा की पीड़ा ने उसके हृदय के अणु-परमाणुओं तक तो छिन्न-भिन्न कर डाला। उसने करुण होकर कहा, "मैंने कभी मना किया है जीजी! सदा तो कहती हूँ तुम विश्राम करो! बैठ कर केवल मुझे आज्ञा देती जाओ। परन्तु तुम कभी मानती हो ? स्वयं सब कुछ छीनकर करने तो बैठ जाती हो!"

"नहीं करूँ तो क्या ठोकर खाऊँ, अपवाद सहूँ।"

"कैसे अपवाद की बात कहती हो जीजी! इन दो सप्ताहों के कठोर ज्वर में भी क्या दो घड़ी तुम चैन से विश्राम कर सकीं ? "

सहसा निरुपमा रो पड़ी! उसके आँसू बहने लगे। उसने करुण होकर कहा, "मैं अभिमान करूँगी कल्प! अपनी जीजी की अवहेलना करते, अपमान करते, तुझे जरा भी संकोच नहीं हुआ, तनिक भी लज्जा नहीं आई! "

निरुपमा सिसकियाँ भरने लगी! फिर कल्पना को खींचकर बाहों में भर लिया और उसके कपोलों को बार-बार चूम कर कहने लगी, "तू जानती है कल्प! मेरी पीड़ा, मेरी प्रतारणा! मेरा है ही कौन, जिसके बल पर मैं अभिमान कर सकूँ! जिसको लेकर मैं माथा ऊँचा करके चल सकूँ। यह जीवन तो आँसू है कल्प, जो केवल मूक होकर बहने के लिये ही बना है। अरे रोती है तू, मेरे लिए। मेरी नन्ही सी कल्प, पगली लड़की। " कहते-कहते निरुपमा ने अपने आंचल से कल्पना की आँखें पोंछ डालीं!

क्षणिक आवेश में निरुपमा कितनी ही मान्य-अमान्य बातें, कल्पना के लिए क्यों न कह दे परन्तु उसके हृदय में कल्पना के लिए जो दबी हुई ममता है, वह तनिक सी दुर्बलता पाते ही हृदय का आवरण उठाकर बाहर झाँकने लगता है। उसके हृदय की अनन्त गहराइयों तक दया का एक

सागर लहराने लगता है ! कल्पना इसे जानती है। जानती है निरुपमा का दारुण दुख ! परन्तु वह सदा मौन ही रह जाती है ! मौन साधना समेटे नयनों में दो अश्रु फैलकर बिखर पड़ते हैं।

तनिक देर बाद निरुपमा फिर बोली, "एक बात कहती हूँ कल्पना।" कल्पना अविमेष नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी।

निरुपमा ने कहा, "मैंने जीवन में कभी सुख नहीं जाना। कभी उसकी कल्पना भी नहीं की ! अनजाने में ही एक दिन जीवन के इस दुसह्य पथ पर जो मैं चलने लगी थी तो एक दिन सहसा अनायास ही यह समाप्त भी हो जायेगा ! फिर मंजिल पर पहुँचकर एक बार पीछे विस्तार से फैले हुए उस पथ पर आँखें घुमाकर देखने से कैसा लगेगा, कितनी पीड़ा होगी ? इसे तुम नहीं समझ सकोगी कल्पना ! मैंने तो पीड़ा से नाता जोड़ा है ! उसी की गोदी में पलकर मैं सुख का आभास पाना चाहती हूँ। फिर तू व्यर्थ में ही मेरे लिए क्यों दुखी होती है ! क्यों अपने अमूल्य आँसू बहाती है। बता तो इस प्रकार दुखी होकर कितने दिन तू जी सकेगी ? नहीं, पोंछ अपने आँसू ! यह सब मेरे सामने नहीं होगा।" निरुपमा अपने आंचल से कल्पना के आँसू पोंछने लगी।

कल्पना ने गम्भीर बनकर कहा, "ईश्वर ने जब दुख दे ही दिया जीजी ! तो उसके लिए दुखी क्या होना ? रोना-चिल्लाना क्या ? और बताओ जीजी ! सुख का महत्व भी क्या दुख के बिना समझा जा सकता है ! तभी तो दोनों ऐसी शृंखलाओं में पास-पास बँधे हैं जो कभी टूट नहीं सकती, कभी खुल नहीं सकतीं !

निरुपमा मौन बैठी रही ! उसके नयनों से केवल दो बिन्दु अश्रु छलक कर बिखर पड़े !

कल्पना ने फिर कहा, "देखो जीजी ! जीवन में यदि अभिलाषाओं का ही महत्व है तो फिर वरदान क्या है ! यदि आँसू ही जीवन है, तो फिर मुस्कान क्या है ! जीवन तो एक ऐसी पहेली है जीजी जो युग बीत जाएँगे, किन्तु

हूँ माँ, कोई पापाचार तो मैंने नहीं किया है। फिर उसके लिए भी :
व्यंगों की प्रतारणा सहनी पड़ेगी।" कहते-कहते निरुपमा के हृदय
रुदन फूट पड़ा। पराजित सी निरुपमा भाग चली अपने कमरे की ओ
उसके नयनों से अविरल अश्रु धारा बहने लगी।

माँ सहसा करुणा हो गई। उसके अन्तर की गहराई से वेदना फूट-फू
कर निकलने लगी! एक बार निरुपमा के दुख से वह काँप गई। उस
कंपित स्वर से कहा, "देख कल्प! मैंने कभी कटुता की बात कही है, क
व्यंग किया है उस पर। वह तो हर समय जाने क्यों रूठी रहती है। जा
कैसी हो गई है वह।" माँ के आँसू छलक आये। कंठ रुद्ध किए दो प
वह खड़ी रही, फिर चुपचाप खाना बनाने चली गई।

उस दिन माँ और कल्पना ने खाना बनाया। किन्तु निरुपमा ने
खाया नहीं। कल्पना कितनी ही बार जाकर मना आई, परन्तु निरुपमा
रोती रही।

फिर कल्पना से भी खाया नहीं गया। उस दिन वह वैसे ही उपवास
करके पड़ रही।

उस दिन सहसा अवरुद्ध कंठ खुल गए, हृदय चीत्कार करने लगा।
कल्पना के मन की पीड़ा साकार होकर घुमड़ने लगी। विगत जीवन
अँगड़ाई लेकर उसके नयनों के बीच झाँकने लगा। एक दिन एक पुरुष
आया और उसकी जीजी को लेकर चला गया। उसने उसे अपने हाथ से
कपड़े पहनाए, माथे में सिंदूर भरा, उस दिन उसे वह सब एक खेल लगा।
फिर एक दिन आया, उसकी जीजी लौट आई! उसका शरीर शून्य था,
माँग शून्य थी, मन शून्य था। कल्पना को विचित्र लगा, परन्तु निरुपमा
को पाकर वह फिर उसी में मग्न हो गई। आज वह नन्ही सी बालिका
युवती होने लगी है। उस दिन जो विचित्र था आज कुछ-कुछ वह समझ
रही है! परन्तु इसके लिए उसकी जीजी इतनी वेदना और पीड़ा अपने
हृदय में क्यों बटोरे हैं, इसमें उसका क्या दोष है, यह बात उस दिन भी

२

जीवन के मोड़ पर पहुँचकर आज फिर से एक नया पथ आरम्भ हो गया। विगत पगडण्डियों का सूनापन एकबारगी फिर पीछे छूटने लगा। आलस्य भरी रातों में, और दिन की थकी हुई उसाँसों के बीच फिर से अट्टहास गूँजने लगे। जेठ के तड़पते हुए सूर्य के नीचे खड़ा हुआ लाल पगड़ी वाला हाथ उठा-उठाकर पथिकों को राह दिखलाने लगा। जीवन में स्वयं सहस्रों बार खोकर भी पथिकों का पथ निर्माण करने लगा। सदियों से यह व्यवस्था चली आई है, युगों तक चलती रहेगी।

आज यूनीवर्सिटी खुल गई। जीवन बरसने लगा। इसी तरह हर वर्ष वह एक नवीन उत्साह लिए खुलती है और हर नया वर्ष उसे निराशा लाकर दे देता है। समस्त दिन के शोर-गुल, अट्टहास और उन्माद के पश्चात् कालेज की विशाल अट्टालिका थकान की विश्रामभरी स्वाँस भरने लगी!

संध्या होते-होते कालेज के सामने वाले रेस्ट्राँ में काफी भीड़ जमा हो गई। नगर का यही सबसे लोकप्रिय रेस्ट्राँ है। नगर के बड़े-बड़े लेखकों, कवियों, प्रोफेसरों, छात्रों और राजनीतिज्ञों का अड्डा यहीं जमता है। यहाँ बैठकर ये लोग अपनी योजनायें बनाते हैं और अपने राजनीतिक दाँव-पेच चलते हैं। आज भी शाम होते-होते इसमें इतनी भीड़ जम गई कि बैठने का कोई भी स्थान शेष नहीं रहा।

बिसरी बातें फिर मन में सुलगने लगीं। स्वप्न फिर से जाग उठे! आज एक बार फिर लड़कियाँ सजीव होकर लड़कों की बातों का विषय बन गईं।

एक लड़का सहसा खिल-खिल करके हँस पड़ा, "अरे वह देखो तुम्हारी सुनयना फिर से लौट आई है। तीन-तीन वर्ष तक बराबर असफल रहने के पश्चात् भी उसने जाने कौन-सी साधना-पथ पर अग्रसर होने की ठान ली है।"

"उस साधना की प्रेरणा कौन है, जानते हो सुधीर ?"

"अरे उसे नहीं जानूँगा क्या," कहकर सुधीर मुस्कराने लगा, "कहते हैं इस बार अपनी बहिन के साथ प्रो० वर्मा की प्रणयलीला चल रही है।"

"अरे वह खूसट अभी जाने कौन सी मोहनी अपने भीतर समेटे बैठा है जो लड़कियाँ उसे छोड़ना ही नहीं चाहतीं, सदा चारों ओर से घेर कर रख लेना चाहती हैं।"

"तुम्हें तो बड़ी ईर्षा लगती है।" सब एक साथ जोर से हँस पड़े। सुधीर झेंपा नहीं, धीमे-धीमे मुस्कराने लगा और वहीं रेस्टराँ के एक अकेले कोने में एक स्त्री-पुरुष मौन होकर बैठे थे! बहुत देर बाद हेम नलिनी ने कहा, "क्या एक प्याला चाय भी नहीं पियोगे निशीथ।"

निशीथ ने तनिक-सा हँस कर उत्तर दिया, "चाय के लिए तो कभी भी मेरी रुचि नहीं रही हेम, जिसकी आवश्यकता है उसे तो तुम मान्य-अमान्य की परिधि के भीतर ही बाँध कर रख लेना चाहती हो!"

"तुम्हें शराब चाहिए, यही तो कहना चाहते हो ?" हेम गम्भीर हो गई।

"देखता हूँ अमृत को कोई सरलता से नहीं भुला सकता।"

"परन्तु मेरी प्रसन्नता-अप्रसन्नता को लेकर आपको भय कब से लगने लगा।"

निशीथ हँस पड़ा। उसने कहा, "आज तो अवश्य ही लग रहा है, जानती हो क्यों ?"

"बताइये।"

"आज तुम बड़ी मधुर लग रही हो, शायद इसी से तुम्हें कोपित करना नहीं चाहता!"

हेम नलिनी ने उत्तर नहीं दिया। बहुत गम्भीर होकर वह बैठी रह गई। कितनी ही बार ऐसा हुआ है, यह उच्छृंखल युवक अपने मद में जाने क्या-क्या कह डालना चाहता है। हेमनलिनी सुनती है तो केवल स्तब्ध

होकर रह जाती है। आज भी मन में ग्लानि भरे कितनी ही देर वह मौन बैठी रही! बहुत देर बाद उसने कहा--

"काश्मीर से आप कब लौट आए, एक बार मुझे सूचना भी नहीं दी?"

"तुम राह पर मेरे लिये पलकें बिछाये बैठी रहोगी, इससे सुखद कल्पना मेरे लिए और क्या हो सकती थी, फिर अपने आने की सूचना देकर अपने स्वर्ण स्वप्नों को तो छिन्न-भिन्न कर डालना मैंने कभी नहीं चाहा हेम।" निशीथ के अधरों पर हास्य की सस्मित सी रेखा सिमट आई जो कितनी ही देर तक विलीन नहीं हुई।

हेमनलिनी ने उत्तर में एक भी शब्द नहीं कहा। शून्य नेत्रों से छत की ओर देखती जाने कब तक वह मौन बैठी रही।

निशीथ ने फिर कहा, "काश्मीर तो जैसे स्वर्ग है हेम! कितना सुन्दर जीवन, कितने मनहर क्षण! रात्रि के अँधियारे में लेटे-लेटे कभी उन विगत स्मृतियों की याद हो आती है तो मन दुखने लगता है! उस दिन यहाँ से जाते समय सोचा था कि दिन जाने कैसे कटेंगे। तभी व्यथा जगने लगी थी! सोचा था कि तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा! तुम्हारे बिना जीवन मानों दूभर हो जाएगा। परन्तु वहाँ जाकर मिली रीता और मृणाल जाने कितनी मोहिनी, जाने कितनी मदिरा अपने में समेटे हुए। उन्हीं के स्नेह भरे आँचल में छिपा, मदिरा की तरङ्गों में लीन हो मुझे जो सुख मिला हेम, सच कहता हूँ, उसके बीच रहकर एक बार भी तुम्हें याद नहीं किया! आज सोचता हूँ तो विचित्र सा लगता है कैसे यह सब हो सका। विश्वंभर की मधुरता जैसे एक ही स्थान पर सिमट कर रह गई हो। मनमानी वहाँ से लौटकर आना नहीं चाहता था। परन्तु यूनीवर्सिटी का यौवन आज यहाँ इतनी दूर तक खींच ही लाया! यदि तुम भी संग होती तो कितना मधुर लगता, आज केवल इस बात की कल्पना से ही हृदय पुलकित होने लगता है।"

हेमनलिनी अब तक मौन बैठी थी! अवरुद्ध कंठ से एक साथ ही वह बोल उठी, "मैं आप से घृणा नहीं कर सकती, क्या केवल इसी अपराध में आपकी समस्त अवहेलना, समस्त उपेक्षा मुझे सहनी ही पड़ेगी।"

"मैंने तो कभी तुम्हारी उपेक्षा नहीं की। मैंने तो केवल सत्य ही कहा है। जो मन के भीतर है, केवल वही स्पष्ट रूप से तुम्हारे आगे खोलकर रख दिया है। संसार का सबसे चरित्रहीन मनुष्य सबसे अधिक सुखी है! साधना मानों जीवन का पथ नहीं है, उसका कोई अंग भी नहीं है। मैं सुखी रहना चाहता हूँ हेम! संसार का सबसे सुखी मनुष्य बनना चाहता हूँ। साधना को लेकर मन को कभी सुख नहीं मिला। जीवन को बाँध कर मैंने कभी भी आनन्द का अनुभव नहीं किया।"

"किन्तु विषपान करके शरीर को गला डालना ही क्या आपका आनन्द है?"

निशीथ आश्चर्य से हेमनलिनी की ओर ताकने लगा, "किसे विषपान कहती हो हेम? मदिरा को! सुख-दुख से जो एक नए विश्व का निर्माण करती है उस मदिरा को! मैं पूछता हूँ हेम कि साधू-महात्माओं द्वारा बुरी वस्तु, कही जाने पर ही कोई वस्तु दूषित तो हो नहीं जायेगी! मदिरा की तरंगों में लीन, नारी के मधुर सौन्दर्य को पलकों में समेटने पर जो आनन्द मिलता है उसे तुम नहीं समझ सकोगी! एक बार पीकर देखो तो कहता हूँ फिर कभी तुम उसकी अवहेलना नहीं कर सकती।"

हेमनलिनी का मन मानो एकबारगी वेदना से क्षुब्ध हो उठा! उसने कहा, "क्या पापों को लेकर कभी आपके मन में घृणा नहीं उपजी?" क्या इस दूषित आनंन्द के परे आपने किसी दूसरे की कल्पना ही नहीं की?"

तब निशीथ ने अपने में स्वयं को खोकर धीमें स्वर में कहना आरम्भ किया, "कभी-कभी सोचता हूँ कि तुम्हें छोड़ दूँ, यह सब छोड़ दूँ। इतनी ममता-मोह, दया-माया तो अच्छी नहीं। इसका न आदि है न अन्त। एक बार हुआ भी ऐसा ही! यह सब छोड़-छाड़ कर जीवन-बन्धन से बाँध डाला। उसी राह पर आँखें मूँद कर चलने लगा। तभी लगा मानो सब संगी-साथी, अपने-पराये एक-एक छूटे जा रहे हैं! दूरी बढ़ती जा रही है, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे कहीं कोई नहीं रह गया है। केवल एक शून्य है जो मन प्राण में भरता जा रहा है। तभी जी घबराने लगा। लगा साधना

जैसे विडम्बना है, छल है, धोखा है। तभी मैं भागा। उस पथ पर फिर कभी लौट कर नहीं आया। सारा विश्व मानो कीचड़ में पड़कर सड़ रहा है। सड़कर गल रहा है। निकलने की राह नहीं है, मार्ग बन्द है।"

क्षणभर रुक कर निशीथ ने फिर कहा, "हमारे समाज की, हमारी सृष्टि की तो आरम्भ से ही नींव गलत पड़ी है हेम। तुम्हारे उस महापराक्रमी विधाता की बात मैं नहीं जानता। उसके रहस्यों को भी नहीं समझ पाता। परन्तु लगता है कि मानव सदा से अपनी मनमानी करता आया है। घृणित को पूज्य और पूज्य को घृणित कह कर सदा उस परमपिता का अपमान करता आया है। लड़-झगड़ कर सदा उसे परास्त करता रहा है। ईश्वर दुर्बल है, इसी से सृष्टि मिथ्या है, समाज गलत है।"

तर्क-वितर्कों से, भक्ति-श्रद्धांजली से उस परमपिता की महत्ता सिद्ध कर देने वाली हेमनलिनी उस उच्छृंखल निशीथ के सम्मुख सदा ही मौन रह जाती है। आज भी वह चुप बैठी रही। उसके नयनकोरों में गहरी पीड़ा सिमट कर बहने लगी। बहुत देर बाद उसने कहा, "जाने वह कौन सी घड़ी थी जिस दिन आपको स्नेह करने लगी। न जाने उस दिन यह बन्धन अनजाने में ही कैसे बँध गया और न जाने क्यों आज यह तोड़े नहीं टूटता। जब तब बैठे-बैठे जाने क्यों तुम पर ममता का सागर उमड़ने लगता है। यदि एक बार तुम से छुटकारा पाती तो सच कहती हूँ कृतार्थ हो जाती।"

निशीथ मौन बैठा रहा। एक अस्फुट मुस्कान उसके अधरों पर सिमट कर विलीन हो गई, जाने उपहास की या गौरव की।

तभी सामने आ खड़ा हुआ एक युवक। वह विपुल है। जीवन के संघर्षों से लड़ते-लड़ते उसका मुख कठोर होकर मानो स्याह पड़ गया है। जिस पर उमड़ आई है विश्वास की सत्यता और कर्तव्य की दृढ़ता। तनिक सा मुस्करा कर उसने कहा, "आप लोगों के संग बैठकर एक प्याला चाय पीने का सौभाग्य क्या मैं पा सकूँगा।"

निशीथ ने खड़े होकर कहा, "आओ विपुल, इधर बहुत दिनों से तुम्हें देखा नहीं। शायद कहीं बाहर चले गए थे।"

विपुल हँस पड़ा, "सब लोग तो मिल कर मेरी लापरवाही किया करते हैं। फिर मैं कहीं भी रहूँ मेरे लिए तो समान ही है।"

विपुल बैठ गया तो हेम ने कहा, "सब लोग मिलकर आपकी लापरवाही किया करते हैं लेकिन आप तो सदा ही उनके उत्थान की बात सोचते रहते हैं। आपके सिद्धान्त विचित्र हैं। आपका दृष्टिकोण अलग है। दुख-सुख, दया-धर्म जैसे सब मिथ्या है, केवल कर्तव्य सत्य है, वही विश्व है, वही परमात्मा! फिर बताइये तो अपने सिद्धान्तों को लेकर इस छिछले से विश्व में पल भर को स्थान पाइयेगा भी तो कैसे? संगी-साथी ढूँढ़िएगा कहाँ? जो विश्व से परे हैं, विश्व उसे समझेगा कैसे, समझकर अपनाएगा कैसे?"

"परन्तु विश्व से दूर अपना एक अलग व्यक्तित्व बनाकर तो मैं रहना नहीं चाहता हेम! मैं तो इसी के कण-कण में गुँथकर इसे बदल डालना चाहता हूँ। इसके अस्तव्यस्त बिखरे हुये नियम-विधानों को एक बार फिर से सजाकर रखना चाहता हूँ। तब एक नवीन सृष्टि और एक नये विश्व का चित्र बार-बार आकर सम्मुख खड़ा होने लगता है! वहाँ वैभव के भारी-भरकम पावों से दरिद्रता के दीन क्रन्दन नहीं कुचले जाते। वहाँ निकम्मे पूँजीपतियों का कोई स्थान नहीं है। जहाँ देश का समस्त लाभ उसके कार्य करने वाले मजदूरों में बाँटा जाता है। पूँजीवाद को हथकड़ियों से जहाँ उन्हें बाँध कर नहीं रक्खा जाता। वहाँ चाँदी के दो टुकड़ों से नारी का मूल्य नहीं आँका जाता है! वहाँ भाई-भाई का गला नहीं कटता। समाज की नींव वहाँ स्वार्थ पर नहीं, त्याग पर बनी है। मनुष्य को वहाँ मनुष्य के अधिकार मिलते हैं, पशुओं की प्रताड़णा नहीं मिलती! एक ऐसा ही विश्व, ऐसी ही सृष्टि मैं बनाना चाहता हूँ हेम।"

हेम को जैसे विश्वास नहीं हुआ, उसने पूछा, "इस विशाल विश्व में लेकिन आप अकेले इतना भार ढो कैसे सकेंगे? आप प्रेरणा पायेंगे कहाँ से?"

एक क्षण रुक कर विपुल ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया, "सफलता-असफलता की जंजीरों से मेरा संसार बहुत दूर है हेम ! सफलता से मुझे सुख नहीं मिलता। असफलता से दुख भी नहीं होता, केवल अपने कर्तव्य को लेकर जीना मैं जानता हूँ। आज का संसार मैं देखता हूँ। मनुष्य मनुष्य न रहकर पशु बन गया है ! पूँजीपतियों और गरीबों के बीच आज इतनी विशाल दीवार खड़ी हो गई है जो तोड़े नहीं टूटती। दोनों के विचार भिन्न हैं, देश भिन्न हैं, ईश्वर भिन्न है। आज मनुष्य घर से बाहर निकलता हुआ भी भय से काँप उठता है, क्योंकि सड़कों और गलियों में भूख की प्रतारणा से सड़-गलकर पड़े हुए मुर्दों की दुर्गन्ध उनके अन्तर तक को सड़ा डालती है ! और वह डरता है घर के भीतर जाता हुआ, जहाँ उसके नन्हें बच्चे माँ के सूखे स्तनों में चिपटे दो बूँद दूध के लिये तड़पते रहते हैं। लगता है जैसे विश्व में प्राण घुट जाना चाहते हैं। अभी कल ही की तो बात है। एक बाबू साहेब एक मजदूर से बड़े ठेले पर काँच का सामान रखवाए लिए जा रहे थे। वह मजदूर था, जिसके कंधों पर आज देश का भार है, जिसके रक्त से आज पूँजीपति अपने खजानों को सींचा करते हैं; वह मजदूर केवल जर्जर हड्डियों का ढाँचा मात्र था, साँस जोर से चल रही थी, शरीर पसीने से तर था, वह नन्हाँ सा मजदूर और यह विशाल बोझ ! सहसा एक ठोकर लगी ! मजदूर एक बार लड़खड़ाया और सँभल गया। परन्तु तभी ठेले से दो-चार बर्तन गिर कर टूट गये। बाबू साहब का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया। लाल होकर मजदूर को दो-चार चाँटे जमा बैठे और पुलिस में देने की धमकी देने लगे। मजदूर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा, 'गरीब आदमी हूँ बाबू, तीन दिन से ज्वर चढ़ा था, भूखा-प्यासा हूँ ! निर्बलता के कारण ठोकर लग गई, क्षमा कर दें !' परन्तु बाबू ने गरीब को और सजा देनी चाही, कहने लगे, 'ज्वर चढ़ा था तो मर जाता, हमारा बोझा ढोने क्यों आया ?'

मैंने देखा तो सह नहीं सका ! जाकर बाबू का हाथ पकड़ लिया। घृणा से मेरा स्वर काँपने लगा, क्रोध से बोला, "जरा उस मजदूर से

अपनी तुलना करो। उससे तिगुना-चौगुना स्वस्थ शरीर रहते हुए भी तुम इससे आधा बोझा भी नहीं ढो सकते और आशा करते हो कि यह जर्जर मानव सारे विश्व का बोझा ढोले, क्योंकि वह केवल गरीब है। तुम जैसे व्यक्तियों के कारण ही आज मानवता पशुता बन गई है! आज विश्व विश्व नहीं रहा, ईश्वर ईश्वर नहीं रहा! धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारी थोथी सभ्यता को।''

वह व्यक्ति अवाक मेरी ओर देखता रह गया और फिर आवेश में कहने लगा, ''मैं तुम्हें देखूँगा।''

उस दिन मैंने सोचा कि समाज मिथ्या है। उसे ठोकर लगाओ तो वह पाँव चूमने को दौड़ आयेगा और यदि हाथ जोड़कर, शीश नवाकर उसके चरणों से लिपट जाओ तो वह निर्दयता से तुम्हें कुचल देगा। बस आवश्यकता है अपने पाँवों में बल की। तभी वह मजदूर सामने आकर खड़ा हो गया। उसने कहा, ''तुमने मुझे मुक्ति दिलाकर मुझ पर अहसान नहीं किया है। मैं उसके लिये लज्जित तो नहीं हूँ! आज एक ओर मनुष्य है और दूसरी ओर वे नरपिशाच जो रुपये की झनझन में अपनी सारी सभ्यता और मानवता डुबोकर आँखें तरेरा करते हैं। बस एक बात सोचता हूँ कि ईश्वर हमें मरने देना नहीं चाहता, इसी से तो आज आप आए हैं।'' केवल इतना कहकर वह चला गया।

उस दिन गौरव से मेरी छाती फूल गई। मैंने देखा कि भारत अभी मरा नहीं है। नरपिशाचों के पाँवों तले वह दब अवश्य गया है, परन्तु अब भी उस में स्वाभिमान है, शक्ति है।

विपुल कहे जा रहा था, उसे बीच ही में रोककर निशीथ ने कहा, ''यह सब जो तुमने कहा है उसका थोड़ा-सा अंश मेरे कानों तक भी आ पहुँचा है। उसी से कहता हूँ कि उन सब विषमताओं को छोड़कर एक बार मदिरा की प्याली भी होठों से लगाकर देखो, नारी के कोमल आंचल के पीछे छिपी ममता को पहचानो। एक ओर विश्व में बर्बरता है तो दूसरी

और रंगीनियाँ भी हैं। दो पल के इस जीवन में इन सीमित बन्धनों को तोड़कर देखो, विश्व कितना सुखी है। संसार तो युगों से बर्बरता का शिकार रहा है और प्रलय के अन्तिम क्षण तक रहेगा।"

विपुल ने क्षुब्ध होकर कहा, "मैं हृदयहीन नहीं हूँ निशीथ, मैंने बहुत कुछ देखा है। समस्त विश्व की बर्बरता के माथे पर सुहाग के सिन्दूर की तरह उज्जवल रंगीनियाँ भी देखी हैं जिसकी चमक के पीछे बर्बरता छिपा करती है। रह गया है केवल वही टीका! गोंड़! इसी से इसे मैं पोंछ डालना चाहता हूँ, इसलिये नहीं कि सारे विश्व में केवल बर्बरता रह जाय, परन्तु इसलिये कि रंगीनियों के पीछे बर्बरता छिप न जाय, ताकि मानव उसे देख सके, समझ सके। केवल तभी यह विषमता दूर हो सकेगी, और मानव समान हो सकेगा! केवल तभी प्रत्येक मानव तुम्हारी तरह रँगरेलियाँ मना सकेगा तभी वह अपना अस्तित्व प्रदर्शित कर सकेगा।"

निशीथ धीमे-धीमे मुस्कराने लगा। यह मानव विश्व से दूर रहकर उसकी परम्परा को बदल डालना चाहता है। यह बदल डालना चाहता है उस विश्व को जिसने स्वार्थ के बन्धन से समाज को चारों ओर से जकड़ रक्खा है, जिसे एक दिन बुद्ध, ईसा और सैयद ने बदल डालने का प्रयत्न किया था, जिसे विश्व की परमाणु शक्ति बदल डालना चाहती है, जिसे शताब्दियों से मजदूरों की आँधियों जैसी चीत्कार उड़ा डालना चाहती है, उसी विश्व को बदल डालना चाहता है यह जर्जर, एकाकी मानव। कुछ देर रुककर उसने कहा, "मैं जानता हूँ विपुल, हमारे विश्व की, हमारे समाज की नींव ही गलत ढंग पर पड़ी है। युगों और शताब्दियों की तह जम-जम कर यह दीवार बहुत ऊँची हो गई है! उसकी जड़ में जाकर क्षण भर में ही उसे उखाड़ फेंकना तो असम्भव है। इसी से उसकी छाया में रहकर अपना अधिकार खोजने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरों के पाँवों तले कुचला जाकर या दया की भीख माँगकर नहीं, वरन घृणा से, उपहास से अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहिए। इस छिछले विश्व में तभी मनुष्य सफलता के पथ पर चलना

सीखेगा। अभी उस दिन की बात है। शहर में कला प्रदर्शनी हो रही थी। यह हेम मुझे भी वहाँ खींच ले गई। मैंने देखा, नगर के कितने ही प्रसिद्ध कलाकार प्रदर्शनी के बाहर खड़े ललचाई निगाहों से उसकी ओर देख रहे हैं। वे अन्दर नहीं जा सकते, क्योंकि उनके पास इतने पैसे नहीं हैं। और बड़े-बड़े सेठ और व्यापारी जिन्हें शायद "कला" शब्द भी नवीन लगा होगा, ऊँचे दर्जे के टिकट खरीद रहे थे। मैंने उन कलाकारों को बेबस देखा, जिनकी लेखनी ने एक दिन विद्रोह की चिनगारियाँ उगली थीं, जिनकी वाणी ने क्रान्ति के गीत गाए थे, जिन्होंने मनुष्य की नैतिकता को उठाया, जिन्होंने मानव को मानव की तरह रहना सिखाया, जो सभ्यता के प्रतीक हैं। उन्हीं कलाकारों को मैंने उस दिन मौन, बेबस और लाचार देखा। मैं हँसने लगा उनके अपराध पर। उन्होंने मानव से स्नेह किया, घृणा नहीं की! उन्होंने मानव की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझा, उसका उपहास नहीं किया, केवल यही था उनका जघन्य अपराध। क्या इस सत्य को तुम कभी अस्वीकार कर सकते हो विपुल ?"

सहसा रुककर निशीथ सामने खिड़की की ओर देखने लगा। वह एक युवक है विश्व की रंगीनियों और वेदनाओं से दूर, खोया-खोया, अनजान सा, दुबला-पतला शरीर, घनी पलकें और बिखरे बाल। विश्व के मानसिक संघर्ष और अध्ययन ने जैसे उसे अत्यधिक गम्भीर बना दिया है! सदैव चिन्तन में लीन रहने वाला वह युवक आज भी मेज पर कुछ पत्र फैलाये बड़े ध्यान से उन्हें देख रहा है!

मेज पर जाने कब से चाय का प्याला रखा था। किन्तु स्वप्न के संसार में वास करने वाले को इस नीरस संसार की क्या चिन्ता। तभी बैरा ने आकर कहा, "चाय ठंडी हो गई है बाबू।" युवक जैसे चौंक उठा। एक ही साँस में चाय का प्याला उठाकर पी गया और फिर झुककर उन पत्रों का अध्ययन करने लगा।

निशीथ उसे देखकर मुस्कराने लगा, हेम से बोला, "जानती हो इसे हेम ?

यह राकेश है। कई वर्ष पहले मेरे साथ पढ़ता था। फिर सफलता ने अपने आशीर्वाद का हाथ हमारे सिर से खींच लिया तो हम दोनों अलग हुए। उस दिन के बाद आज फिर उसे देखा है। उस दिन भी तो वह ऐसा ही था, बिलकुल सनकी, पागल! और आज भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।"

निशीथ राकेश के पास जा पहुँचा! उसके सामने बैठकर कहने लगा, "इन पाँच वर्षों के विछोह के पश्चात् मुझे पहचानना कठिन तो नहीं होगा राकेश!"

राकेश ने उसे देखा और धीमे से मुस्कराने लगा, जैसे निशीथ को देखकर कोई प्रसन्नता नहीं हुई, दुःख भी नहीं लगा, उसने कहा, "तुम्हे कैसे भूल सकूँगा निशीथ। उन बीते हुये दिनों की मधुरस्मृति क्या इतनी सरलता से भुलाई जा सकती है?"

निशीथ उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, "आओ अपने मित्रों से तुम्हारा परिचय कराऊँ।"

पल भर राकेश सोचता रहा, फिर कहा, "चलो।" निशीथ ने राकेश से हेम और विपुल का परिचय कराने के बाद पूछा, "अच्छा बताओ तो इन पाँच वर्षों की लम्बी अवधि में जीवन कैसा बीता? कहाँ-कहाँ की खाक छानी?"

राकेश तनिक सा मुस्करा पड़ा। उसने कहा, "उस दिन जीवन की दौड़ में जब तुम असफल रहकर पीछे छूट गए तो तुम्हें छोड़ जाना पड़ा। यह संसार तो बड़ा विचित्र है। यहाँ प्रत्येक मानव के पास अपने स्वार्थ हैं, अपनी धुन है, अपनी लगन है, जिसमें मित्र, सम्बन्धी, अपना-पराया वह किसी को नहीं देखता। बढ़ना ही मनुष्य का जीवन है और वह दौड़ लगाकर आगे बढ़ना चाहता है। तभी सरकार की ओर से अमरीका जाने का प्रस्ताव आया। वहाँ जाकर मैं अध्ययन करने लगा। डाक्टरी पास की। परन्तु रसायनों की उन सीमित परिधियों के भीतर रहना मुझे तनिक भी न भाया। बार-बार उन्हीं शताब्दियों के पुराने रसायनों को दोहरा कर मानव के रोगों का उपचार

करने से मैं ऊब उठा, तभी मैंने आगे अध्ययन आरम्भ कर दिया और आज भी कर रहा हूँ! जानते हो क्या? मैं मृत्यु को जीतना चाहता हूँ, मैं मानव को अमर बनाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"

सब अवाक होकर उसकी ओर देखने लगे। वर्षा के पहले जैसे वायु रुक जाती है और वातावरण घोर निस्तब्धता में लीन हो जाता है, उसी प्रकार दो क्षण को यह रेस्ट्राँ का छोटा सा कमरा भी गहरी निस्तब्धता में खो गया।

यह मनुष्य कुछ रसायनों के बल पर उस मृत्यु को जीत लेना चाहता है, जिसकी एक दिन भारतवासियों ने देवता मान कर पूजा की थी, जिसे एक दिन दमयन्ती ने अपने प्रतिव्रत धर्म से जीता था और जो आज भी ईश्वर को पहचानने का एक मात्र रास्ता है!

आश्चर्य से हेम नलिनी पूछने लगी, "आप काल को जीतना चाहते हैं, प्रकृति और ईश्वर से संघर्ष करना चाहते हैं?"

राकेश ने गम्भीर होकर कहा, "जब मैं मनुष्य को मरता हुआ देखता हूँ तो बड़ा दुःखी हो जाता हूँ और आश्चर्य होता है। जब मनुष्य का अन्त मृत्यु ही है तो उसे जीवन ही क्यों मिला। जीवन में जितना भय, आतंक और दुख है, वह केवल मृत्यु को लेकर ही। मनुष्य दुखी और भयभीत क्यों होता है? केवल इसलिये कि कहीं काल उसे अपनी बाँहों में न समेट ले! यदि मृत्यु का भय मिट जाय तो मनुष्य रोगों की चिन्ता ही न करे, केवल मृत्यु के मिट जाने से संसार की एक बहुत बड़ी पीड़ा और वेदना क्षण भर में ही लोप हो जाय।"

हेम नलिनी को उत्सुकता लगी। उसने पूछा, "यह सब सत्य है अवश्य। परन्तु मृत्यु को आप जीतियेगा कैसे?"

"मैंने मृत्यु और जीवित शरीरों का अध्ययन किया है, मैंने देखा, उनमें कोई अन्तर नहीं है। एक का हृदय धड़क रहा है और दूसरे की धड़कन बन्द हो चुकी है। आत्मा नाम की कोई भी वस्तु मुझे कहीं भी दीख नहीं पड़ी।

विज्ञान से भी, और बुद्धि से भी। हृदय की धड़कन ही शरीर में रक्त का संचार करती है। हमारी धमनियों में प्रवाहित होता हुआ रक्त वातावरण से एक गैस 'आक्सीजन' लेता है, जिससे रक्त में ताप उत्पन्न होता है। यही रक्त शरीर में दौड़कर उसे ताप पहुँचाता है और तभी मनुष्य जीवित रहता है। हृदय की धड़कन रुक जाने से हमारी धमनियों में रक्त संचारित नहीं हो पाता और तभी मनुष्य ठंडा हो जाता है। उसका रक्त जम जाता है। यही मृत्यु है। यदि किसी प्रकार हृदय फिर से धड़कने लगे तो मनुष्य जीवित हो सकता है। इसी का अनुसंधान मैं कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि कुछ रसायनों का हृदय में इन्जेक्शन देने से वह फिर धड़कने लगेगा।"

विपुल और निशीथ मौन बैठे थे और हेम नलिनी सोच रही थी, "तुमने मनुष्य की बुद्धि से नहीं, वैज्ञानिक की बुद्धि से देखा है डाक्टर! इसी से आत्मा को न पहचान सके। आज का विज्ञान तो केवल ध्वंस कर रहा है, वह जीवन-दान क्या देगा?"

को भुलावा देकर जी रहे हैं और इसी प्रकार जीते रहना चाहते हैं।

तभी नौकर अपने मालिक को जगा देख, नित्य की भाँति 'ह्विस्की' का एक गिलास उसके सामने रख गया। निशीथ एक ही साँस में उसे पी गया। आज कालेज को कितनी देर हो गई है, और अभी वह सोकर ही उठा है। किन्तु नित्य ही तो ऐसा होता है। और अब तो इसकी चिन्ता भी छोड़ देनी पड़ी है, प्रोफेसरों को भी और उसे भी, निशीथ सोचकर स्वयं मुस्कराने लगा।

थोड़ी देर बाद ही वह कपड़े पहन कर बाहर निकल आया और मोटर लेकर चल पड़ा। आज बड़ा सुन्दर लग रहा था। मन में जाने क्यों आनन्द की रेखा सी फूट रही थी। निशीथ घूम-घूम कर कालेज आती लड़कियों का सौन्दर्य देखने लगा! कालेज जाने का आज उसका मन न हुआ। कितनी ही देर इधर-उधर सड़कों पर ही घूमता रहा। फिर विचार हुआ कि जरा राकेश के यहाँ ही हो आते! उस मृत्यु से युद्ध करने वाले वैज्ञानिक को जरा जीवन की रंगीनियाँ भी दिखा दे। तभी उसने मोटर राकेश के घर की ओर मोड़ दी।

निशीथ ने देखा, राकेश अपने कमरे में नहीं है। छोटा सा कमरा, एक पलँग, दो-चार कुर्सियाँ, और ढेर की ढेर किताबें फैली हुई, अस्त-व्यस्त! निशीथ को लगा जैसे राकेश और उस कमरे के रूप में कहीं कोई अलगाव नहीं है। उसी कमरे के बगल में एक और कमरा है, वह राकेश की प्रयोग-शाला है। निशीथ ने देखा उसी में बैठा राकेश किसी पुस्तक के ऊपर झुका हुआ है और बड़े ध्यान से उसके अक्षरों को देखकर कोई रहस्योद्‌घाटन करने का प्रयत्न कर रहा है। वह सीधा उसी के पास जा खड़ा हुआ। कमरे में मुर्दों के सड़ जाने से दुर्गन्ध आने लगी थी, जिस से एकबारगी निशीथ का मन भर उठा। राकेश के कन्धे पर हाथ रख कर उसने कहा, "इस सुहावनी बेला में भी तुम यहाँ चारों ओर से बन्द होकर इन मुर्दों की दुर्गन्ध को जीवन में बसाये बैठे हो। इन काले-काले नीरव अक्षर के बाहर भी एक रंगीन दुनियाँ है, शायद इस बात पर कभी तुमने विचार भी नहीं किया!" राकेश चौंक कर उसकी ओर देखने लगा, मानों स्वप्न से

जागा है। अब निशीथ ने देखा उसकी आँखें लाल हो आई हैं, बाल बिखरे हैं, मुँह सूख गया है।

निशीथ ने पूछा, "शायद कल की सारी रात इसी प्रकार बैठे-बैठे बिता दी है राकेश ?"

राकेश ने गम्भीर होकर कहा, "एक उलझन आ पड़ी है निशीथ, कल प्रातः से ही उसे सुलझाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। परन्तु लगता है जैसे वह सुलझाते-सुलझाते उलझ जाती है। मैंने एक रसायन तैयार किया है। इसे एक विष में मिलाकर हृदय में रक्त के साथ प्रवाहित करने से कुछ समय के लिए मृत हृदय फिर से धड़कने लगता है। परन्तु विष के प्रभाव से मनुष्य की चेतना-शक्ति लुप्त हो जाती है। मनुष्य कुछ देर तक जीवित अवश्य रहता है, परन्तु चेतनाहीन। इस विष का प्रभाव नष्ट करना है या इसके स्थान पर कोई और रसायन प्रयोग में लाना है। यही समस्या है जो सुलझाये नहीं सुलझती और इसीलिये यह मेरी प्रथम विजय होते हुये भी पराजय रह गई है!"

निशीथ मुस्कराने लगा, "मृत्यु पर विजय पाने से पहले कहीं तुम स्वयं मृत्यु के शिकार न हो जाना डाक्टर। कल प्रातः से तुम बिना खाये-पिए, इस अन्धकारपूर्ण कमरे में इस पुस्तक पर झुके बैठे हो। तुमने एक बार यह भी सोचने का प्रयत्न नहीं किया कि इस नीरव दुनिया के बाहर भी एक रंगीन दुनिया है और सदा उस की उपेक्षा करते रहना ही मनुष्य का कर्तव्य नहीं है।"

राकेश का तर्क करने का मन न हुआ। उसने कहा, "अपने ध्येय में लापरवाही दिखाकर उसे अधूरा छोड़ देना भी तो मनुष्य का कर्तव्य नहीं है निशीथ।"

"और जीवन को घुला डालना मनुष्य का कर्तव्य है। नहीं राकेश, आज उठो और चल कर देखो प्रकृति अपने पूर्ण यौवन पर है।"

"परन्तु यह सब.........!"

निशीथ ने राकेश के हाथ से पुस्तक छीनते हुये कहा, "इस समय यह सब छोड़ो" और जबरन उसे उठाकर खड़ा कर दिया।

कुछ ही देर बाद विमूढ़ सा राकेश निशीथ के साथ कार में आ बैठा।

आज शीतल समीर ने उसके थके विश्रान्त शरीर में एक पुलक भरी सिहरन दौड़ा दी। आज वह मुग्ध सा चारों ओर देखता रह गया। रंग-रँगीली लड़कियाँ, हरे वृक्ष, नीला आकाश। इन सब ने मिलकर आज उसके मन पर अपना आधिपत्य जमा लिया।

निशीथ ने उसकी ओर देखा और विजय से मुस्कराने लगा। उसने कहा, "कहो वैज्ञानिक, क्या अपनी इस अन्धकारपूर्ण, कुटिया की तुलना मन ही मन इस सौन्दर्य के भंडार से कर रहे हो।"

"नहीं निशीथ, तुलना नहीं कर रहा हूँ, केवल इतना अनुभव कर रहा हूँ कि प्रकृति के इस चिरअमर सौन्दर्य से यदि आज का विकराल मानव और पद-दलित मानवता प्रेरणा पाकर अपने भीतर भी सौंदर्य संचित करना सीखे तो यह प्रकृति और इसका निर्माता दोनों धन्य हो जाँय!"

"मानव से सौन्दर्य संचित करने की आशा करना तो निरी कल्पना मात्र है डाक्टर। मनुष्य तो स्वयं चारों ओर संघर्षों तथा उलझनों का जाल बिछाये बैठा है, जिससे बाहर वह निकलना नहीं चाहता। वह तो केवल उसी में कीड़ों की भाँति सड़कर एक दूसरे को नष्ट कर डालना चाहता है। यही उसका जीवन है और यही है उसका सुख।" कुछ देर रुक कर निशीथ कहने लगा, "एक बात पूछूँ राकेश?"

"पूछो।"

"तुम्हारा जीवन तो सदा से साधना का जीवन रहा है। उसी में निरन्तर तुम समाये रहे हो, किन्तु आज उस साधना पथ से दूर हट कर तुमने

एक और दुनियाँ देखी है, एक नवीन अनुभव किया है। मैं पूछता हूँ क्या अपने उन मुर्दों से ऊपर उठकर इस ओर तुम्हारी तनिक सी भी आसक्ति नहीं हुई ?"

"क्षणिक सुख शान्ति नहीं दे सकता निशीथ ! केवल साधना से ही मुझे सुख मिलता है और उसी से चिर-अमर शान्ति।"

निशीथ मुस्करा पड़ा, "क्या कहते हो डाक्टर संसार से दूर रह कर अपने को गला डालने का नाम ही तो साधना है। मानवमात्र की उपेक्षा तथा उपहास सहते रहने का नाम ही तो साधना है। विश्व तो छल और प्रपंच के आधार पर बना है, केवल उसी को अपनाकर वह उन्नति कर सकता है।"

मोटर इस समय कालेज के सामने तेजी से दौड़ी जा रही थी। राकेश ने निशीथ की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह कालेज आते-जाते लड़के-लड़कियों को मौन होकर देखने लगा।

तभी निशीथ ने सुना उसे कोई पुकार रहा है! उसने वहीं मोटर रोक दी। देखा, लता उसी ओर मुस्कराती चली आ रही थी। हाथ जोड़कर लता सामने आ खड़ी हुई। उसने कहा, "आप आज कालेज नहीं आये। मैं तो कल से आपकी राह देख रही थी।"

निशीथ के होठों पर हँसी नाच गई। "कोई कोकिल खड़ी नयन बिछाये मेरी राह देखती रहे, इससे अधिक सुख की और कौन सी बात हो सकती है लता।"

लता के कपोलों पर एक धीमी सी लालिमा दौड़ गयी। एक पल को वह लाज से भरी मुस्कान लिए नीचे ताकती रह गई। तभी निशीथ ने कार का दर्वाजा खोलते हुये परिचय कराया, "आप हैं राकेश और आप लता हैं।"

लता ने मुस्कराते हुये हाथ जोड़ दिये। पल भर पहले जो लज्जा उसके मन पर जबरन अधिकार बनाकर बैठ गई थी वह क्षण भर में ही दूर हो गई। कार में बैठते हुए उसने कहा, "आप किसी आवश्यक कार्य

से तो नहीं जा रहे हैं ? क्या मैं भी तनिक देर के लिये आप लोगों के साथ चल सकती हूँ ?"

"क्यों नहीं लता, यह राकेश वैज्ञानिक हैं। आज इन्हें अन्धकारपूर्ण कमरे से दूर विश्व की रंगीनियाँ दिखाने जबरन खींच लाया हूँ। ऐसी अवस्था में आपका साथ सुखकर ही अधिक होगा।"

लता राकेश के बराबर आकर बैठ गई। आज राकेश को कुछ संकोच होने लगा। अपने कमरे के एकान्त में निरन्तर बैठे-बैठे वह विश्व से कुछ अलग सा हो गया है। और नारी का साथ तो उसने कभी पाया नहीं। यह नारी जो उसके इतना पास निःसंकोच होकर बैठी है, कैसी है यह, और क्यों है इतनी आकर्षक ? यह बात बार-बार उसके हृदय में चक्कर लगाने लगी।

लता निशीथ से कह रही थी, "आज एक नया नृत्य तैयार किया है। कई दिन से लीन होकर उसी का अभ्यास कर रही थी। आज अचानक मैं स्वयं ही उसपर मुग्ध हो गई, फिर सोचा कि जो कला का पारखी है, उसे भी दो घड़ी इसका रसास्वादन कराती आऊँ। तुम देखोगे निशीथ, भारतीय नृत्य-कला में यह एक नवीन वस्तु होगी।"

निशीथ ने लता की ओर देखकर कहा, "कई दिन से आपको देखा नहीं था, सोचा था अवश्य ही किसी कला, साधना में रही होंगी। आज देखता हूँ मेरी कल्पना असत्य नहीं उतरी है।"

तब आतुर होकर लता ने कहा, "चलिए न बँगले पर। आपको वह नृत्य दिखाकर मन का भार तो पहले उतार डालूँ।"

निशीथ ने मोटर अपने बँगले की ओर मोड़ दी। बँगले के मध्य में एक विशालकाय तालाब है। उसी की बाहों में बँधी चंचल सी लहरियाँ आज उन्मत्त होकर कोई स्वर्गीय गीत गाने लगीं। तालाब के बायें ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर पक्षी कूक उठे। शीतल बयार ने आज एकबारगी लता के मन और प्राण में बसन्त की बहार ला खड़ी की। मतवाली-सी लता पाँव में घुँघरू

बाँधने लगी निशीथ वीणा ले आया।

लता ने नृत्य आरम्भ किया, आज उसके मन में उत्साह था, भावों में सजीव यौवन एक नयी प्रेरणा समेटे आज उसके पग उठ रहे थे। घुँघुरू के मधुर स्वरों में जैसे आज वह सब कुछ भूल गई। वीणा का एक-एक शब्द उसकी कल्पना को प्यार से थपथपाता रहा और स्वयं अपने :र मुग्ध होकर वह नृत्य करती गई। आज उसके स्वरों से जो रागिनी निकली उससे सारी प्रकृति मस्त हो गई।

राकेश मौन होकर देख रहा था। उसे बड़ा सुख मिला। उसके जीवन में आज अचानक एक नया पथ खुल गया। उसका मन शांति से परिपूर्ण हो उठा। अपने उस साधना के जीवन की तुलना वह इस मधुर जीवन से करने लगा। आज प्रथम बार उसे लगा कि यदि उस जीवन में सुख है, शांति है, तो यहाँ भी उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। लता का प्रत्येक भाव, अंग-प्रत्यंग राकेश को आकर्षित करने लगा और इस चिर अमर आनंद को लाख प्रयत्न करने पर भी वह अस्वीकार न कर सका।

निशीथ द्रुत गति से वीणा बजा रहा था। लता भी उसका साथ देती हुई नृत्य कर रही थी। उसका अंग-अंग नाचने लगा और उसके संग नाचने लगा विश्व, नाचने लगी सृष्टि, नाचने लगा यौवन, स्वप्न की-सी तल्लीनता और मधुरता समेटे कई क्षण बीत गए।

अब उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ने लगे। अन्त में वह थक कर बैठ गई। उसने आतुर स्वर में कहा, "अब नहीं होगा निशीथ। बन्द कर दीजिये, रोक दीजिये इस वीणा को।"

निशीथ की वीणा पर दौड़ती हुई अँगुलियाँ रुक गईं। उसने नयनों में उल्लास भरकर कहा, "जैसा, और जो कुछ आज देखा है, पहले कभी नहीं देखा था।"

लता ने मुस्करा कर कहा, "आपने यह प्रसंशा मुझे दान के रूप में

नहीं दी है, इसी से इसकेउत्तर में मुझे धन्यवाद देने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ेगा।"

नौकर चाय ले आया।

चाय पीकर लता उठ खड़ी हुई। "अब जाऊँगी निशीथ बाबू, बहुत समय हो गया है।"

निशीथ जानता है, कला में निरन्तर रत रहने वाली लता अति अल्प-भाषिणी है। इसलिये वह भी उठ खड़ा हुआ। उसने चुपचाप उसे जाने की स्वीकृति दे दी। राकेश ने भी खड़े होकर कहा, "मैं भी चलूँगा। निशीथ, कभी-कभी समय मिले तो मेरी कुटिया पर भी दर्शन दे जाया करो।" निशीथ ने प्रस्ताव किया, "आइये आपको मोटर पर छोड़ आऊँ।" किन्तु लता ने रोक दिया, "घर है ही कितनी दूर। इस समय पैदल ही जाना भला लगेगा।"

दोनों राह में चुपचाप चलते गए। बहुत देर बाद एक बार राकेश ने कनखियों से लता की ओर देखा तो उसकी घनी काली अलकों के बीच एक पतली-सी रक्तिम-सिंदूर की रेखा खिंच रही है। इस नवीन रहस्योद्घाटन से वह एकबारगी चौंक उठा। अनायास ही उसके मुख से निकल पड़ा, "आप विवाहिता हैं लता।"

राकेश ने प्रश्न किया, परन्तु साथ ही इसकी निरर्थकता और दुरूहता पर सहम कर चुप हो गया।

परन्तु लता ने बुरा नहीं माना, उसने कहा, "जी हाँ मैं विवाहिता हूँ।"

फिर दोनों मौन हो गए। थोड़ी देर बाद लता आप ही आप कहने लगी, "आप जानते हैं, मेरे पति हैं नगर के प्रमुख व्यापारी शिवदत्त जी। उन्हों ने मुझे सुखी करने के लिए सभी कुछ किया है, सारा ऐश्वर्य, अनन्त धनराशि लाकर मेरे पाँवों पर बिखेर दी है। मेरी कोई भी बात वह अधूरी नहीं

रहने देते, और सब से ऊपर मुझे मिला है उनका प्यार। इन पाँच वर्षों के विवाहित जीवन में मैंने देखा है, एक पल को भी वे मुझसे विमुख नहीं हुये। तनिक सा अवकाश पाते ही वह मेरे पास दौड़े आते हैं। परन्तु फिर भी जाने एक कैसी दरार है, जो कभी भरने नहीं पाती। कला के लिये उनके मन में स्थान नहीं है। वह ठहरे नगर के प्रमुख व्यापारी, उन्हें इन सब का अवकाश कहाँ। और मेरा जीवन तो है कला को ही समर्पित। मैं जानती हूँ मेरा मन रखने को वह नृत्य भी देखते हैं, मुझसे संगीत भी सुनते हैं, परन्तु क्या वास्तव में वह उसका आदर कर सकते हैं। केवल झूठी प्रसन्नता से वह मेरे मनको बहलाया करते हैं। इसीलिये मैं कभी उन्हें प्यार नहीं कर सकी। लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं। जब कभी उनकी प्यार से फैलाई झोली में मैं अपना जीवन भरने दौड़ पड़ती हूँ तो कोई अज्ञात दिशा से आकर जबरन मेरे पाँवों में लिपट जाता है, तब मैं मूक-सी वहीं खड़ी देखती रह जाती हूँ। मैं उनका आदर करती हूँ, उन पर श्रद्धा रखती हूँ, उनके तनिक से संकेत पर तन-मन न्यौछावर करने को तत्पर रहती हूँ। मैं मन से पूछती हूँ कि क्या यह प्यार नहीं है। तो मन में कोई "केवल कर्तव्य, केवल कर्तव्य" कहकर चिल्ला उठता है। मैं उन्हें प्यार करना चाहती हूँ राकेश बाबू। किसी दिन मै पागल हो जाऊँगी, अवश्य पागल हो जाऊँगी!" कहते-कहते लता के नयन सजल हो उठे! वह मौन होकर चलने लगी।

लता जब मौन हुई तो उसे ध्यान आया कि जाने कितनी मान्य-अमान्य बातें वह आज प्रथम भेंट में ही राकेश से कह गई। यह सोचकर उसका हृदय व्यथा से फटने लगा। आज प्रातः से ही उसका मन दीवाना हो रहा है। कई दिन के निरन्तर परिश्रम से उसने यह नृत्य तैयार किया था। इसी में कितनी ही रातें उसने जाग कर बिता दी हैं। आज सुबह ही वह आतुर होकर पति को अपना नृत्य दिखाने खींच लाई थी। तभी सूचना मिली कि कपड़े की मिल में मजदूर मशीन तोड़ने पर उतारू हो गये हैं।

तब लाख प्रयत्न करने पर भी वह पति को न रोक सकी। उसके उत्साह की चिन्ता उसके मन में ही जलकर राख हो गई। तभी से उसका मन खिन्न हो गया और चेष्टा करने पर भी वह पति की उपेक्षा करने की बात मन से न निकाल सकी।

परन्तु अब राकेश के सामने यह सब कह कर उसे ग्लानि होने लगी। आज उसने अपने को बहुत तुच्छ समझा। राकेश के साथ चलना भी अब उसे मुश्किल हो गया। जल्दी-जल्दी पग बढ़ाकर वह अपने बँगले के दरवाजे तक जा पहुँची। अन्दर जाती हुई हाथ जोड़ कर केवल इतना कह गई, "कभी-कभी दर्शन दे जाया कीजियेगा राकेश बाबू।"

राकेश दो पल तक उसे देखता रहा। फिर चुपचाप अपने घर की ओर चल पड़ा।

रात्रि के शान्त आवरण को हटाकर सूर्य की प्रथम किरण ने जब कोलाहल भरे जगत् में प्रवेश किया तभी निशीथ हेम नलिनी के घर के सामने जा पहुँचा। हेम के पिता अविनाश बाबू ड्राइंग रूम में बैठे समाचार-पत्र पढ़ रहे थे।

अविनाश बाबू लम्बे से छरहरे शरीर के व्यक्ति हैं; सहृदय और उदार। सामाजिक क्षेत्र उनका बहुत ऊँचा है। इसलिये उनके यहाँ अक्सर लोगों का जमघट रहता है, पार्टियाँ हुआ करती हैं और तब उन का यह छोटा सा ड्राइंग रूम अट्टहासों से गूँज उठता है। नगर में कोई भी उत्सव हो, हेम का हाथ पकड़े वह अवश्य वहाँ पहुँच जाते। उनके अधरों पर सदा ही एक निर्मल हास्य की रेखा खिंची रहती है। उनका कथन है कि जीवन को भार बना कर उसे कन्धों पर ढोते फिरने से जीवन कभी सार्थक नहीं होगा। अपने को विश्व की खुशियों में ले करके जीना ही वास्तविक जीवन है। मनुष्य को मरने के लिये नहीं जीने के लिये जीना चाहिये। उनके सिद्धांत जो भी हों, इतना निश्चित है कि उन्हें कभी किसी ने उदास नहीं देखा।

केवल पाँच ही वर्ष उन्हें यहाँ आए हुए, परन्तु इतने ही में जैसे नगर भर उन से परिचित हो गया है। उनका यहाँ आने से पहले का इतिहास किसी को भी ज्ञात नहीं। वह क्या करते हैं, कैसे जीविका चलाते हैं; यह कभी भी कोई नहीं जान पाया। इस विषय में लोगों के बीच भाँति-भाँति की बातें हुआ करती हैं। कितने ही व्यक्ति काल्पनिक कथाओं का आश्रय लेकर उनके सम्बन्ध में बातचीत किया करते हैं। परन्तु वास्तविकता क्या है, यह कभी किसी को ज्ञात न हो सका।

एक दिन वह अचानक ही यहाँ इस मकान में आकर रहने लगे। तभी से वह नित्य ही जाति-बिरादरी में, भिन्न-भिन्न समाजों में, हेम को साथ लिये घूमफिर कर लोगों का परिचय प्राप्त करने लगे। वृद्धों से वह गम्भीर मुद्रा में गम्भीर विषयों पर बात करते, युवकों से वार्तालाप करते समय उनमें एक अल्हड़ता, एक नवीन यौवन फूटने लगता और बच्चों के साथ तो जैसे उनका लड़कपन ही लौट आता।

निशीथ यहाँ अक्सर आता है। अक्सर उसकी चाय पार्टी यहाँ जमती है। आज भी जब निशीथ हाथ जोड़कर अपने नित्य के स्थान पर जा बैठा तो अविनाश बाबू हँस कर कहने लगे, "अरे आओ निशीथ, मैं तो तुम्हारी राह ही देख रहा था। सोचता था कि आज तुम अवश्य आओगे। इधर दो दिन से तुम नहीं आये तो चाय-पार्टी कुछ जमी नहीं।" फिर हेम नलिनी को पुकार कर कहा, "हेम बेटी आज चाय नहीं लाओगी क्या? देखो यह निशीथ कब से बैठे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

हेम नलिनी हाथ में चाय की ट्रे लिए मुस्कराती हुई सामने आ खड़ी हुई। उस ने कहा, "आज सोकर उठने में जरा देर हो गई थी बाबू जी, क्षमा कीजिये।"

घर में अनेक नौकर-चाकरों के होते हुये भी हेम नलिनी अविनाश बाबू का सारा काम अपने ही हाथ से करती है। उस और उसे अन्य किसी पर विश्वास नहीं है। कभी-कभी अविनाश बाबू कहा करते हैं, "बिटिया, इतने नौकर-चाकरों के होते हुये भी तुम इस बूढ़े की दिन-रात जो सेवा किया करती हो यदि मरने के बाद इसका जवाब-तलब उस परम-पिता ने मुझसे किया तो उसका मैं क्या उत्तर दूँगा।"

हेम नलिनी हँस देती है। वह जानती है कि यदि एक दिन भी उन्हें नौकर-चाकरों के हाथ में सौंप दूँ तो वह एक दम से सब कुछ छोड़-छाड़ कर पूरे सन्यासी हो जायेंगे और अविनाश बाबू भी इस बात को भली-

भाँति जानते हैं। परन्तु फिर भी जब-तब ये शब्द उनके मुख से निकल ही जाते हैं। तब हेम प्यार से उनका हाथ पकड़ कर कहती है, "नौकर-चाकर तो अपने होते नहीं बाबू जी, और न तो उनके मन में दया-माया ही रहती है, फिर कैसे उन निर्दयी हाथों में तुम्हें छोड़ कर मैं निश्चिन्त हो जाऊँ?"

निशीथ का अभिनन्दन करके हेम नलिनी बैठ गई। फिर चाय बना कर अविनाश बाबू और निशीथ को देने लगी। अविनाश बाबू उत्साह से कहने लगे, "यह समोसे चखे तुम ने निशीथ। और यह सन्देश, हेम। इन्हें विशेष रूप से मेरे लिए बनाया करती है। जैसा इन्हें यह बनाती है वैसा मैंने कभी नहीं खाया। देखो, थोड़ा सा चख कर देखो।"

निशीथ सन्देश उठाकर खाने लगा।

अविनाश बाबू कहने लगे, "यह मेरी चिड़िया हेम, दिन-रात लग कर मेरा काम किया करती है, मेरी सेवा किया करती है, जैसे उसके जीवन का केवल मैं ही एक सत्य हूँ और सब मिथ्या है, झूठ है। मैं कहता हूँ कि इतने नौकर-चाकर जब हाथ पर हाथ रखे चुपचाप बैठे देखा करते हैं तब बताओ तो तुम कौन से अपराध में अपने शरीर को थकाकर चूर कर डालती हो। तब मेरी चिड़िया अधीर होकर कहने लगती है, इसमें मुझे बड़ा सुख मिलता है बाबू जी, इससे मुझे मत रोकिये, नहीं तो एक दिन मैं मर जाऊँगी।" फिर कुछ गर्व से वह कहने लगे और मेरी चिड़िया क्या यह नहीं जानती कि उसका यह बूढ़ा बाप क्या उसके बिना पल भर भी जी सकेगा? हेम एक दिन भी इन सबसे हाथ खींच ले तो क्या वह अँधेरी कोठरी के एक कोने में चुपचाप पड़ा-पड़ा मर नहीं जायेगा? तभी तो एक बात बार-बार मन में उठती है। तुम जानते हो निशीथ क्या?"

निशीथ ने उत्तर नहीं दिया, केवल अविनाश बाबू के मुख की ओर

मूक होकर देखने लगा। वह जानता है कि बिना चित्र पढ़े अपनी बात सुनाने में ही अविनाश बाबू को अनन्त सुख का अनुभव होता है।

अविनाश बाबू तब आप ही आप कहने लगे, "नहीं जानोगे, तुम नहीं जानोगे निशीथ। इस बात को मैं और मेरी बेटी के सिवा और कोई नहीं जानता। परन्तु है यह अटल सत्य। लो सुनो आज तुम भी जान लो। मेरी यह बिटिया हेम पहले जन्म में मेरी माँ थी, इसी से तो अपने स्नेह के आँचल के नीचे सुलाकर प्रति पल मेरा दुख हरा करती है। उस दिन जब इसकी माँ मरी यह जटिल सत्य मेरे सामने आ खड़ा हुआ और लाख प्रयत्न करने पर भी मैं इसे अस्वीकार न कर सका।"

निशीथ के लिए यह बातें कुछ नयी नहीं हैं। वह जानता है कि अविनाश बाबू दिन में कई बार कई व्यक्तियों के सामने यही शब्द दोहराते हैं। इसमें उन्हें आन्तरिक सुख मिलता है। शान्ति मिलती है। हेम नलिनी और अपने सम्बंध को लेकर वह भाँति-भाँति की बातें किया करते हैं। विश्व की जातियों के अनेक ऐसे सम्बंध हैं जो वे नित्य ही अपने और हेम के बीच जोड़ते रहते हैं।

चाय समाप्त हो गई तब हेम नलिनी ने पूछा, "आज उठने में इतनी देर हो गई बाबू जी, कि आपको रामायण भी नहीं सुना सकी। अब सुनियेगा?" कह कर हेम नलिनी रामायण लेने जाने लगी।

अविनाश बाबू ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, "नहीं हेम, इस समय रहने दो। हेमंत के घर आज संगीत सभा जमेगी, निमंत्रण आया था अब तो वहाँ जाना ही पड़ेगा, समय हो आया है।" तब वह निशीथ से कहने लगे, "देखो निशीथ, यह नन्हीं सी लड़की दिन-रात पूजा-आराधना में मग्न होकर अपना जीवन बरबाद कर रही है। इस छोटी-सी अवस्था में ही दिन-

रात साधना में रत रहना चाहती है। मैं रोकता हूँ तो केवल मुस्करा कर रह जाती है।"

निशीथ ने कहा, "जान में या अनजान में मनुष्य जो भी करता है, अपने सुख के लिए करता है अविनाश बाबू, फिर उसके कार्यों से उसे रोक कर उसके सुख में बाधा देना तो कदापि उचित नहीं हो सकता।" अविनाश बाबू को यह तर्क कुछ अच्छा नहीं लगा। उन्होंने उत्साह से कहा, "सिनेमा गृहों में, क्लबों में तथा बाजारों में उल्लासभरी लड़कियों को देखकर सोचने लगता हूँ कि वह भी कम सुखी तो नहीं हैं, परन्तु मैं तो बूढ़ा हुआ, मेरी बुद्धि भी मन्द पड़ गई है। मैं यह सब क्या जानूँ। अच्छा, मैं तो चला निशीथ। और देखो हेम, भोजन बनाकर मेरी राह में आँखें न बिछाये रहना। आज मेरा भोजन वहीं होगा।"

अविनाश बाबू चले गये।

तब निशीथ ने कहा, "आज तुमसे एक विशेष बात कहने आया हूँ हेम।"

"कहिये।"

"इधर कई दिनों से मन बहुत व्याकुल हो रहा है। किसी काम में भी चित्त नहीं लगता। एक-सा ही जीवन व्यतीत करते-करते आज थक-सा गया हूँ, मैं परिवर्तन चाहता हूँ, जीवन में भी और प्राणों में भी, इसी से सोचता हूँ कि देश भ्रमण करूँगा। कल प्रातः ही मैं चला जाऊँगा। फिर शायद दो-तीन मास पश्चात् लौटूँ।"

हेम उदास हो गई। उसने कहा, "आप दो दिन नहीं आए फिर भी मैंने आपसे शिकायत नहीं की, अब कौन-सा अधिकार लेकर आपसे शिकायत करने आऊँगी।"

"रूठो नहीं हेम, आज मेरे मन की दशा पर एक बार दया करके मुझे क्षमा कर दो।"

"कितनी बार आप से कहा है, इस प्रकार जीना भी कोई जीना है।

अपने जीवन को सुधारिए, मनुष्यों की भांति रहना सीखिए। परन्तु आप हैं कि मनमानी करते चले जायेंगे, किसी की सुनेंगे नहीं।"

"इस समय मैं उपदेश नहीं सुनूँगा हेम। मैंने कभी कोई गलत मार्ग नहीं अपनाया, इस बात को मैं निश्चय से जानता हूँ।"

"अच्छा ऐसा ही सही। परन्तु यहाँ हमें एकाकी रह जाना होगा। इस बात पर क्या आपने एक बार भी विचार नहीं किया।"

"किया है हेम, मैं तो सदा से तुम्हारे बन्धन मानता आया हूँ, इसी से प्रार्थना करता हूँ कि क्या आज एक क्षण को भी मुझे उन बन्धनों से मुक्त नहीं कर सकोगी।"

"अच्छा एक बात मानियेगा।"

"कहो।"

"आज आपको खाना यहीं खाना होगा। मैं स्वयं अपने हाथ से आपके लिए खाना बनाऊँगी। बोलिए निमंत्रण अस्वीकार तो नहीं कीजियेगा।"

"मुझे मदिरा चाहिये हेम, क्या तुम मुझे यहाँ पीने की आज्ञा दे सकोगी ?" अधीर होकर हेम नलिनी कहने लगी, "नहीं, आज आप मदिरा नहीं पी सकते, प्रतिज्ञा कीजिये, आज आप नहीं पियेंगे।"

तनिक-सा हँस कर निशीथ ने कहा, "आज तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगा, जो-जो कहोगी, चुपचाप करता चला जाऊँगा।"

"अच्छा, आप बैठिए, मैं अभी भोजन का प्रबन्ध करके आती हूँ। हेम नलिनी चली गई।

थोड़ी देर पश्चात् थाली हाथ में लिए हेम नलिनी लौट आई। थाली मेज पर रख कर उसने कहा, "अच्छा अब जूते उतार दीजिए। जूते पहन कर खाना स्वास्थ्य को हानि पहुँचाता है।"

निशीथ ने जूते उतार दिये।

"अब हाथ धो आइये।"

आज्ञाकारी बालक की भाँति निशीथ हाथ धो आया। उसने हँस कर कहा, "अब आज्ञा कीजिए।"

हेम नलिनी भी मुस्कराने लगी, "अब भोजन तैयार है।"

"तुम नहीं खाओगी, हेम।"

"नहीं आप खाइए, मैं बाद में खा लूँगी।"

निशीथ ने खाते-खाते पूछा, "एक बात पूछता हूँ सच-सच बताओगी।"

"पूछिए।"

"हमारे आज के ऊँचे कहलाये जाने वाले समाज में रह कर भी और कालेज में ऊँची शिक्षा पाकर भी तुमने यह गृहस्थ धर्म सीखा कहाँ से?"

हेम नलिनी ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बस एक बार वह धीमे से मुस्करा कर रह गई।

खाना खा चुकने के बाद निशीथ ने कहा, "जाने से पहले एक बात कहे जाता हूँ हेम। आज भोजन में जैसा सुख मिला, वैसा जीवन में कभी नहीं मिला था। आज का तुम्हारा यह सत्कार भ्रमण जीवन में सदा मेरे भीतर एक प्रेरणा भरता रहेगा।"

जब निशीथ जाने लगा तो हेम ने उसे रोककर कहा, "आज एक बात और कहती हूँ। प्रतिज्ञा करो उसे अस्वीकार नहीं करोगे।"

"कहो।"

"मैं जानती हूँ तुम उसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

"लेकिन फिर भी कहने की जिद कर रही हो।"

"मैं देखना चाहती हूँ कि इस विदाई की वेला में भी [illegible] उपेक्षा कर सकते हो।"

"अच्छा, ऐसा ही सही, लेकिन मुझे [illegible] से लेना चाहती हो।"

"प्रतिज्ञा करो कि भ्रमण-काल में कभी शराब नहीं पियोगे।"

"निशीथ एक क्षण को विमूढ़-सा बैठा रह गया। फिर उसने करुण होकर कहा, "नहीं ऐसा वचन मुझसे न लो हेम। इसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। मैं मर जाऊँगा, जरूर, मर जाऊँगा।"

"मैं जानती थी तुम यही उत्तर दोगे। अच्छा, अब मैं कुछ नहीं कहूँगी।" हेम के मुख से एक हलकी-सी उसाँस निकल गई।

कितनी ही देर मौन रहने के बाद निशीथ ने कहा, "आज आशीर्वाद भी नहीं दोगी हेम! तुम्हारा आशीर्वाद तो मुझे सदा फलता रहा है।"

एक क्षण को हेम चुप बैठी रही। फिर उसके मुख से हठात् ही निकल पड़ा, "जाओ तुम जहाँ रहो सुखी रहो!"

निशीथ चला गया। हेम के मुख से एक भी शब्द नहीं निकले। वह चुपचाप उसकी ओर देखती रह गई।

५

[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गई। [illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था कि [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] मे [illegible] [illegible] लगे। [illegible] ओर दृष्टि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मे [illegible] दीखते। जीवन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बन गई। लाशों के लिए [illegible] [illegible] [illegible] वे वैसे ही [illegible] [illegible] [illegible] गई। उनमे उठी दुर्गन्ध वायु मे [illegible] [illegible] मानव के [illegible] मे [illegible] [illegible] व्यथा उठाने लगी। [illegible] मे [illegible] पशु-पक्षी निराश्रित [illegible] [illegible] [illegible] भटकने लगे।

राकेश ने देखा तो व्यथा मे पागल हो उठा। काल के [illegible] [illegible] [illegible] धुन में मग्न राकेश के सम्मुख असह्य हो उठी यह मृत्यु की [illegible] काल के इस रूप ने उसके मन में एक अनोखी हलचल [illegible] [illegible] विस्फारित नेत्रों से वह सड़कों और गलियों में पड़े [illegible] [illegible] देखता रह जाता। तब उसे लगता जैसे उसकी पराजय [illegible] [illegible] इसी पराजय पर काल अभिमान से सर ऊँचा कर उसके [illegible] [illegible] रहा है। वह सोचता है कि ऐसा क्यों हो रहा है, क्या [illegible] [illegible] रहेगा, क्या कहीं भी इसका अन्त नहीं होगा? [illegible] [illegible] आ रहा है एक क्षण में ही वह सारे जगत को [illegible] [illegible] भी नहीं बचेगा, कोई भी अछूता नहीं छूटेगा।

सारे दिन घूम-घूम कर वह पीड़ितों का [illegible] [illegible] [illegible] अध्ययन करता। उसके मन में बार-बार कोई [illegible] [illegible] [illegible]

मैं पराजित नहीं हो सकता, कभी पराजित नहीं हो सकता।"

वह रात को उठता और चुपचाप शून्य पगडंडियों की ओर चल देता। वहाँ वह देखता कि पगडंडियों के दोनों ओर दूर तक कब्रें सोई पड़ी हैं। श्मशान में दिन-रात प्रचण्ड अग्नि धू-धू करके जला करती है। प्रति क्षण उसमें शवों की आहुति होती रहती है। तब लगता है जैसे विश्व जीवन-शून्य हो गया है, चारों ओर रह गया है केवल काल का मौन अट्टहास। कभी-कभी श्वानों के भूँकने का स्वर या किसी एकाकी वृक्ष से उल्लू की चीत्कार सुनाई पड़ जाती है। तब राकेश एकाएक भय से काँप उठता है और सोचने लगता है, "क्या सचमुच मृत्यु ही सत्य है, और जीवन मिथ्या है, छल है।"

आज भी अमावस्या के घने अन्धकार में प्रकृति जैसे डूब-सी गई। बहुत दूर पर किसी श्मशान में अन्धकार के हृदय को चीरकर अग्नि की लपटें निकल रही हैं, मानों उन पीड़ितों का चीत्कार ईश्वर के चरणों तक पहुँचा देना चाहती हों। चारों ओर रह गई है गहरी अन्धेरी और गम्भीर नीरवता। केवल निशाचर ही रह गए हैं वाणीमय और दोनों ओर असंख्य कब्रें सोई पड़ी हैं। बहुत दूर से किसी निराश्रित अबला के रुदन का एकाकी स्वर उठ रहा है और साथ ही शृगाल अपनी अशुभ चीत्कार से अपनी सत्ता जताने का प्रयत्न कर रहा है।

आज राकेश का मन रो उठा। वह बार-बार अपने से प्रश्न करने लगा, "क्या यही सृष्टि है उस परमपिता परमात्मा की? क्या यही वह जीवन है जिसे अपनाये रखने के लिए मानव सदा से लालायित रहा है?"

राकेश अपने अन्तर से उठे इन्हीं प्रश्नों पर विचार करता चला जा रहा था, तभी कोई व्यक्ति आकर उसके पाँवों से लिपट गया। राकेश ने चीत्कार से पहचाना, कि वह स्त्री है।

स्त्री उसके पाँव पकड़े-पकड़े आतुर होकर कहने लगी, "डाक्टर राकेश

तुम्हीं हो न ? हाँ, और कोई नहीं हो सकता, इस समय इस शून्य पथ में अकेला और कोई नहीं हो सकता। मेरी माँ को बचा लो डाक्टर। वह मर रही है, हम अनाथ हो जायेंगे। एक बार उसे बचा लो डाक्टर। मैं जीवन भर तुम्हारा आभार मानूँगी।"

राकेश ने अपने पाँव खींच लिए, उसने सान्त्वना देते हुये कहा, "अधीर न हो बहन, चलो मैं चलता हूँ, कहाँ चलना होगा।"

स्त्री ने ऊँगली उठा कर बता दिया, "वहाँ उस सामने वाले गाँव में, जहाँ वह एकाकी दीपक जल रहा है।"

स्त्री अन्धकार में ही आगे-आगे चलने लगी, राकेश पीछे-पीछे। कुछ देर बाद राकेश ने पूछा, "मैं तुम्हें क्या कह कर पुकारूँ बहन।"

"मुझे...मुझे कल्पना कहते हैं डाक्टर।"

"कल्पना !" एक बार राकेश ने दोहराया और चुप हो गया।

गाँव में जाकर डाक्टर ने देखा चारों ओर से मुर्दों की दुर्गन्ध आ रही है। वहीं उस पीपल के पेड़ के नीचे एक साथ आठ कब्रें सोई पड़ी हैं। उसी समय किसी ने कहा, "इस परिवार के आठों व्यक्ति चिर निद्रा में लीन हो गये, कोई भी बच नहीं सका।" राकेश ने चुपचाप सुन लिया, वह आगे बढ़ता गया।

अधीर गति से कल्पना एक फूस के मकान में प्रवेश कर कहने लगी, "आइये, चले आइये डाक्टर। जल्दी चले आइये।"

राकेश ने देखा, छोटा सा मकान, क्षीण प्रकाश और उसी के बीच एक वृद्ध स्त्री भू-शैय्या पर पड़ी है।

"माँ, माँ, डाक्टर आए हैं, अब तुम अच्छी हो जाओगी, अवश्य अच्छी हो जाओगी माँ।" कल्पना पुकारने लगी।

रोगिणी ने आँखें खोलीं, उसने कहा, "डाक्टर को लाई है कल्पना, परन्तु व्यर्थ है यह सब, अब मुझे कोई नहीं बचा सकता।"

राकेश ने रोगिणी के पास बैठ कर कहा, "आप घबराइए नहीं, मुझे विश्वास है आप अवश्य अच्छी हो जायेंगी।"

कराह कर रोगिणी ने एक बार राकेश की ओर देखा, फिर एक क्षण रुक कर उसने कहा, "नहीं डाक्टर, मैं जानती हूँ, अब मुझे मृत्यु के हाथों से कोई नहीं छीन सकता, तुम भी नहीं डाक्टर, आज मुझे जाना होगा, जरूर जाना होगा।"

कल्पना ने अपना सिर उसके वक्ष पर रख दिया। वह सिसक-सिसक कर कहने लगी, "नहीं, ऐसा न कहो माँ, तुम्हारे बाद हम कहाँ जायेंगे, क्या करेंगे, हम अनाथ हो जायेंगे माँ।"

रोगिणी दो क्षण तक चुप रही। उसकी पलकों के अश्रु उष्ण पृथ्वी पर लुढ़क पड़े। थोड़ी देर पश्चात् उसने कहा, "सुना डाक्टर, कल्पना कहती है, हम अनाथ हो जायेंगे। वह असत्य नहीं कहती। तुम राकेश ही हो न डाक्टर, तुम्हारी दया-ममता की बात मैं पहले भी सुन चुकी हूँ। क्या मेरी तनिक सी सहायता नहीं करोगे, बोलो डाक्टर?"

तब राकेश ने चुपचाप कह दिया, "कहिये।"

रोगिणी कहने लगी, "मेरी ये दो लड़कियाँ हैं, निरुपमा और कल्पना। सदा से अभागिन रही हैं दोनों। इन्होंने कभी सुख नहीं देखा। और आज ये अनाथ हो जाएँगी। क्या इनका भार तुम अपने ऊपर ले सकोगे डाक्टर। तुम्हारे तो बहुत-सी दास-दासियाँ तथा अन्य लोग होंगे। उन्हीं की भाँति यह भी एक ओर पड़ी रहेंगी। बोलो, क्या इन्हें स्वीकार कर लोगे डाक्टर?

राकेश विमूढ़-सा उसकी ओर देखता रह गया।

वृद्धा ने फिर कहा, "अब समय नहीं है डाक्टर, मैं जा रही हूँ, बोलो क्या इन्हें स्वीकार कर सकोगे ?"

राकेश के मुख से हठात् निकल पड़ा, "आप निश्चिन्त रहिए, मैं कभी इन्हें अपने से विलग नहीं होने दूँगा।"

तभी एक आर्त चीत्कार उठी और वह रोगिणी एकदम नीरव हो गई।

निरुपमा और कल्पना उससे लिपट कर रो उठीं। बहुत देर बाद राकेश ने सात्वना देते हुए कहा, "चलो निरुपमा, माँ जिस मिट्टी से बनी थी, उसी में जा मिली हैं, अब तुम उन्हें कदापि वापस नहीं ला सकती।"

"क्या आप हमें अपने साथ ले चलेंगे डाक्टर, "कल्पना ने उत्सुकता से पूछा।

"मैंने जो प्रतिज्ञा की है उससे मैं कभी विमुख नहीं हूँगा कल्पना।"

कल्पना को मानो विश्वास नहीं हुआ। वह एक बार फिर से पूछ बैठी, "क्या हम लोग आप के घर रह सकेंगे ?"

"मैं भी तो वहीं रहता हूँ कल्पना, फिर तुम लोग क्यों नहीं रह सकती।"

तभी निरुपमा सीधी होकर बैठ गई, उसने कहा, "यदि आप हमें अपने ऊपर भार समझ कर ले जाँय तो हम भीख माँग कर पेट भर लेंगी। किन्तु आपके साथ कदापि न जाएँगी।"

राकेश ने देखा, उस स्वर में दृढ़ विश्वास है। उसने मन ही मन उस स्वाभिमान के सामने सिर झुका दिया। उसने कहा, "ऐसा न कहो निरुपमा उठो देर हो रही है, अभी माँ का दाह-कर्म भी करना है।"

तब नयनों में अश्रु और हृदय में कसक लिये, दग्ध-सी निरुपमा और कल्पना चुपचाप उठ कर खड़ी हो गईं।

रात्रि का घना अँधियारा चारों ओर से सिमट कर प्रकृति के मन प्राण में भरता चला आ रहा है, जैसे एक गूढ़ रहस्य है, जो गहन होता जायगा और रात्रि के उन्हीं रहस्यमय क्षणों में खुली खिड़की के सामने बैठी है निरुपमा। हृदय में एक दर्दभरी चीत्कार है, और नयनों में अविरल गति से बह रहे अश्रु। दूर पश्चिमी नीलाकाश में कोई एकाकी तारक किसी विरहिणी के दीपक की तरह मन्द गति से टिमटिमा रहा है और अर्द्ध चन्द्र धीमे-धीमे अवसान की ओर बढ़ रहा है।

निरुपमा, बेबस, लाचार-सी, शून्य में आँखें गड़ाये बैठी है। तीन सप्ताह हुए उसे यहाँ आए। यहाँ आकर उसे कुछ विचित्र-सा लगा है, एक अनोखापन सा, जिसे समझने की वह सहस्रों बार चेष्टा कर चुकी है, परन्तु सदैव ही जीवन उसके सामने एक पहेली-सा बन कर खड़ा रह गया है। प्रयत्न करने पर भी वह इस जीवन को अपना नहीं सकी है। रात्रि के घने अन्धियारे में बैठे-बैठे उसे याद हो आती थी अपनी माँ, वह छोटा सा मकान, कल्पना और नदी का वह शून्य किनारा, जहाँ बैठ कर उसने सहस्रों बार आँसू बहाये हैं, मन हल्का किया है। वह जीवन कितना स्वच्छन्द था, आज का वातावरण तो जैसे उसके सामने बहुत तुच्छ है। यहाँ जैसे एक घुटन है, जो प्राण खींच लेना चाहती है।

उसने देखा कल्पना उसके सामने सुख की निद्रा में मौन होकर सो रही है। कल्पना में अभी कितना लड़कपन है, बचपन का कितना औत्सुक्य है। यौवन धीरे-धीरे उसमें पदार्पण करता चला आ रहा है, परन्तु जैसे वह उससे अनभिज्ञ है, उसकी उसे कभी चिन्ता नहीं हुई। नन्हें-नन्हें

बालकों की भाँति वह कार्य करती है, बातें करती है। डाक्टर के कमरे में जाकर कौतूहल से उनकी समस्त वस्तुओं को उलट-पलट कर देखने लगती है। वह एक-एक वस्तु उठा कर देखती है, छू कर देखती है। और तभी यदि किसी शव के पैने दाँतों और भयंकर मुख के दर्शन हो जाते हैं तो डर कर भागने लगती है। भागती है जल्दी-जल्दी और मेरी गोदी में मुख छिपा कर पूछने लगती है, "जीजी, डाक्टर इन शवों का भला क्या किया करते हैं। वह तो उन्हें छूते हैं, उनसे बातें भी करते हैं। मैंने तो उसे एक बार देखा ही था तो लगा कि जैसे प्राण निकल जाएँगे। वह कितना भयंकर है जीजी।" फिर कभी पूछने लगती है, "क्या सब मृत्यु के बाद इतने भयंकर हो जाते हैं। क्या माँ भी ऐसी ही हो गई होंगी! क्या हम भी ऐसे ही हो जाएँगे?" मैं सुनती हूँ तो काँप उठती हूँ। प्राण नरक में ठहरना नहीं चाहते। उसे हृदय से लगा कर कह उठती हूँ, "तू वहाँ न जाया कर कल्प, कभी न जाया कर, तुझे बड़ा भय लगता है।" परन्तु कल्पना मानती नहीं। उत्सुकता से जाकर पूछने लगती है, "बताओ डाक्टर, तुम इन शवों के साथ दिन-रात क्या किया करते हो?"

डाक्टर हँस देता है, "मैं इनमें जीवन डालने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"क्या सचमुच ये जिन्दा हो जाएँगे?"

राकेश सम्पूर्ण विश्वास से कहता है, "अवश्य जिन्दा हो जाएँगे कल्प।"

"अच्छा डाक्टर, तुम्हें इनसे डर नहीं लगता, मुझे तो बहुत डर लगता है।"

"इनसे डर काहे का कल्प, ये शव तो इन्हीं मेज-कुर्सियों की तरह बिल्कुल बेजान हैं!"

"तुम उनसे बातें भी करते हो, डाक्टर?" — -

राकेश को आनन्द मिलता है। वह मुस्करा कर पूछने लगते हैं, "हाँ, करता हूँ, तुम भी सुनोगी उनकी बातें?"

"हाँ, सुनूँगा, मेरी माँ की बातें सुनवा दो, बोलो, कब सुनवाओगे डाक्टर ?"

डाक्टर गम्भीर हो जाते हैं, वे बात बदल कर कहने लगते हैं, "तुम अब जाओ कल्पना, मुझे काम करने दो।" तब कल्पना उदास होकर लौट आती है।

इसी प्रकार जाने कितने प्रश्न कल्पना पूछती है और डाक्टर छोटा-सा उत्तर दे देते हैं। उसे यहाँ की हर बात विचित्र लगती है। अस्त-व्यस्त गृह, बिखरी हुई वस्तुएँ और साधना में लीन डाक्टर। इस समय भी निरुपमा ने देखा, डाक्टर दो काँच की प्यालियाँ मेज पर रख कर उन पर झुके बैठे हैं। एक प्याली में कुछ द्रव है जिसे वह धीरे-धीरे दूसरी में उडेल रहे हैं। यह जीवन निरुपमा को कुछ अप्राकृतिक-सा लगता है, जैसे सब अपनी धुन में लीन हैं, किसी को एक दूसरे की चिन्ता नहीं। निरुपमा फिर खिड़की पर आ बैठी। आकाश में चन्द्रमा काले मेघों के पीछे छिप गया, उसी को देखती वह बैठी रही।

अभी उसी दिन की तो बात है। डाक्टर आकर कहने लगे, "इसे अपना ही घर समझना निरुपमा, जिस चीज की आवश्यकता हो तुरन्त कह देना, तनिक-सी भी लज्जा न करना। मैं तो बेपरवाह-सा व्यक्ति हूँ, मुझे किसी बात की सुधि नहीं रहती, यदि अनजाने में कोई अपराध हो जाय, तो क्षमा कर देना।"

निरुपमा को बड़ा भला लगा। उसके नयनों में आनन्द के अश्रु उमड़ आये। उसे उस दिन प्रथम बार लगा जैसे डाक्टर उसका कोई अपना हो, बिल्कुल अपना। उसी अपनत्व की झोंक में ही वह कह बैठी, "एक बात कहती हूँ, मानियेगा ?"

"कहो।" डाक्टर पूछने लगे।

"खाना जो नित्य रेस्तराँ से आता है, क्या किसी भी प्रकार बन्द नहीं हो सकता ?"

डाक्टर मुस्कुराने लगे, "क्या उपवास करके जीवन व्यतीत करने की ठान ली है, निरुपमा ?"

"जिस घर में स्त्रियाँ होती हैं, वे ही खाना बनाया करती हैं, ऐसी ही हमारे भारतीय समाज की प्रथा है, रेस्तराँ का रोज-रोज खाना, क्या यह ठीक है डाक्टर ?"

"मैंने तो इस विषय में कभी सोचा ही नहीं है। किन्तु यह गृहस्थ का-सा भार तो मैं कभी भी नहीं सँभाल सकूँगा, निरुपमा। तुमसे सच कहता हूँ, इस विषय में मैं बहुत कायर हूँ।"

निरुपमा हठ पकड़कर बैठ गई, "आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा। हम सब कर लेंगी। खाली बैठे-बैठे यहाँ मन भी तो नहीं लगता। बस एक बार आप आज्ञा दे दीजिये।"

तब निरुपमा से डाक्टर ने कह दिया, "अच्छा तो फिर जैसा तुम चाहो करो। तुम्हारे ऊपर सब कुछ छोड़ कर निश्चिंत हो जाऊँ, इससे अधिक हित मेरा और क्या हो सकेगा।"

उसी दिन से निरुपमा ने समस्त आवश्यक वस्तुएँ जुटानी आरम्भ कर दीं। वह स्वयं अपने हाथ से खाना बनाती, फिर कल्पना को साथ लिए घर के सँवारने-बनाने में लग जाती है, इसी प्रकार वह सारे दिन व्यस्त रहती है। अपने अतीत को वह भुला देना चाहती है और निकाल फेंकना चाहती है उस टीस को, जो सदैव अनायास ही उसके हृदय को कुरेदा करती है। परन्तु वह जितना अपने को भुलाना चाहती है उतनी ही घनी बन कर अतीत की छाया उसके हृदय में घुमड़ने लगती है। उस विसरे से अतीत की प्रत्येक घटना, प्रत्येक क्षण उसके सम्मुख सजीव बन कर खड़े हो जाते हैं। तब उसका हृदय जैसे शोक और दुख से पिसने लगता है।

आकाश में दृष्टि निबद्ध किए निरुपमा दूर पश्चिम में उगे उस एकाकी तारे को देखने लगी, उत्सुक, निरुपाय सी। उसके मन में आया कि वह उसे

देखती रहे, देखती रहे।

पूर्णिमा का चाँद न जाने कब उन आकाश में उमड़े, श्यामल मेघों के तले जा छिपा, इसकी उसे खबर भी न लगी। उसकी कमर में साड़ी का छोर लिपटा रहा, देह पर कुछ भी न रहा, इधर उसका ध्यान ही न गया। वह अधीर सी खिड़की में बैठी अपलक आकाश की ओर निहारती रही।

तभी रसायनों की ग्रन्थि में उलझा राकेश ऊब उठा, उन नीरस क्षणों से। पल भर को उठ कर वह छत पर टहलने चला आया। निरुपमा की खिड़की छत के सामने ही पड़ती है, परन्तु अनजान सी निरुपमा उसे देख न सकी।

राकेश अनायास ही निरुपमा की खिड़की के सामने आकर खड़ा हो गया। विस्मय से एक बार वह निरुपमा को निहारने लगा, यह आवरण-हीन, अम्लान सौन्दर्य जो अनजाने में ही उसके नयनों के सामने आ पड़ा था। उसे वह किसी भी तरह अस्वीकार न कर सका। पुलकित, रोमांचित राकेश विमूढ़-सा खड़ा रह गया। इतनी मधुरता की भावना उसके जीवन में दूसरी नहीं थी और सामने उस चन्द्र की ज्योत्स्ना-सी अर्ध नग्न सुन्दरी, रूपसी तरुणी के नेत्र आकाश की ओर वैसे ही निबद्ध रह गए।

तब कौतूहल से राकेश कह उठा, "तुम हो प्रकृति के इस असीम सौन्दर्य के बीच, चन्द्रमा-सी स्मित अपरूप, तुम हो निरुपमा।"

तभी कहीं किसी वृक्ष से कोई पपीहा बोल उठा, "पीउ कहाँ, पीउ कहाँ" चन्द्रमा बादलों से निकल कर अपनी प्रचण्ड ज्योति बिखेरने लगा। निरुपमा चौंक उठी। सामने देखा, डाक्टर विस्मय से खड़े उसे निहार रहे हैं। नवोढ़ा की-सी लज्जा लिए निरुपमा काँपने लगी। हाय, कैसे कठिन क्षणों में डाक्टर ने उसे आ घेरा। निरुपमा भाग निकली, जाकर अपने बिस्तरे पर पड़ रही। उसने लज्जा से तकिए में मुँह छिपा लिया और विस्मित-सा राकेश कौतूहल लिए उसे देखता ही रह गया।

७

अमावस्या की रात्रि गहन होकर और भी भयानक हो उठी। पवन सन-सन करके क्रूरता का अट्टहास करने लगा। पत्र-विहीन किसी वृक्ष की सबसे ऊँची चोटी पर बैठा कोई पक्षी प्रकृति की इस कुरूपता की खिल्ली उड़ाने लगा, हिः हिः हिः हिः। कहीं दूर से किसी एकाकी स्थान का करुण चीत्कार उठने लगा और वृक्षों के घने झुरमुट की डालों पर बैठा पेचक छटपटाने लगा। मृत्यु की इस काली छाया से काँप कर पृथ्वी मानों श्रीहीन होकर मौन, सिमटी-सिकुड़ी सी पड़ी रह गई।

पृथ्वी के समस्त मानव, जड़, चेतन मौन निद्रा में सो गये, परन्तु वहाँ नगर से दूर उन घने वृक्षों के झुरमुट में अपने नन्हें से तन को छिपाये, वह नन्हा-सा मकान जागृत ही रहा।

उसी मकान के द्वार की एक दरार से धीमा-सा प्रकाश फूट रहा है मानो इस घनघोर अमावस्या की रात्रि में कोई एकाकी तारक उगा हो।

स्तब्ध नीरवता में बसे उसी मकान के भीतर तीन व्यक्ति गम्भीर मंत्रणा में लीन हैं। बाईं ओर एक ठिगना-सा स्वस्थ व्यक्ति बैठा है। श्यामल रंग, बिखरे बाल, और कठोर मुद्रा। उसकी नाक चपटी है। उसकी भौंहें घनी और पलकें लम्बी हैं। लगता है जैसे सदा कार्य में जुटा रहना ही उसका स्वभाव है। वह कभी थकना नहीं जानता। थक कर बैठना नहीं जानता। उसी के सामने बैठा है एक और व्यक्ति, क्षीणकाय लम्बा शरीर अस्त-व्यस्त मुद्रा, आँखें धँसी हुईं और कठोर, दृढ़-संकल्प। और तीसरा है क्रान्तिकारी विपुल।

"तो क्या तुमने हड़ताल कराने का निश्चय कर लिया है जीवन ?" विपुल ने पूछा।

इसके अतिरिक्त और चारा ही क्या है मित्र।" उस लम्बे से व्यक्ति
र दिया।

"परन्तु इससे देश के उत्पादन को कितनी हानि होगी, क्या इस विषय
मने पूर्ण रूप से विचार कर लिया है? आज हमारे देश को प्रत्येक
तु की कितनी आवश्यकता है, क्या इस कठिन समय में हड़ताल करा कर
म अपने आदर्शों से नहीं गिरेंगे?"

"आज हमें अपनी शक्ति राष्ट्रीयता को छोड़ कर मानव की मुक्ति में
लगानी है मित्र, और आदर्श," जीवन अट्टहास कर उठा, "कौन से आदर्श
की बात कहते हो, क्या अपने अधिकारों की माँग करना आदर्श नहीं है
अभी कल ही की तो बात है, क्या इतनी जल्दी भूल गए। मोहन मजदूरों
के लिए चन्दा एकत्रित कर रहा था उनकी दयनीय दशा सुधारने के लिए।
वह गिरफ्तार कर लिया गया। क्या दलितों के लिए उनकी उन्नति के साधन
जुटाना भी पाप है, अपराध है? उसे क्या पकड़ा गया? क्योंकि वह मनुष्य
को अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखा रहा था। क्योंकि वह लोगों को
बता रहा था कि मानव मात्र को जीने का अधिकार है और उसे मनुष्य की
भाँति ही जीना चाहिए। यही तो है हमारे आज के विश्व का आदर्श, क
आज तुम भी उसी आदर्श की दुहाई देना चाहते हो?"

"परन्तु हड़ताल कराने से, उत्पादन कम करने से तो मजदूरों का
अहित होगा जीवन, उनका वेतन और कम हो जायगा, वह भूखों
जायँगे।"

"अपने अधिकारों की माँग करने के लिए थोड़ा त्याग करने की
श्यकता है मित्र। थोड़ा कष्ट सहने की जरूरत है। और यदि ये
अपने पीड़ित सगे-सम्बन्धियों को छोड़ कर दिन-रात मिलों की
पिसते रहें तो इससे लाभ किसे होगा? इन दीन मजदूरों को तो
ही नहीं होगा न? इससे लाभ होगा केवल पूँजीपतियों को। जो

वे और धनी हो जायँगे। उनकी तिजोरियाँ सोने-चाँदी से भर जायँगी। उनके नयन इन दीनों की ओर से बन्द हो जायँगे। आराम से बैठे रहने पर भी उन्हें तो सब कुछ मिलेगा, परन्तु इन दीनों को क्या मिलेगा, क्षुधा, पीड़ा, अवहेलना। वह लाभ इन मजदूरों में तो बाँट नहीं दिया जायगा।"

"परन्तु हड़ताल कराने से पहले यदि कोई शान्तिपूर्ण समझौता हो जाय तो मैं इसे उत्तम समझूँगा। मेरे मत में एक बार मिल मालिकों से बातचीत कर देखनी चाहिये।"

"नहीं मित्र। माँगने से मनुष्य निर्बल पड़ जाता है, वह शिथिल हो जाता है। हमें लड़ना है। मानवता के लिये, मानव के लिये, अधिकारों के लिये हमें संघर्ष करना है। उसी से हमें शक्ति मिलेगी, तभी हम कुछ पा सकेंगे। संघर्ष ही मनुष्य को आगे बढ़ाता है, शिथिलता उसे पीछे छोड़ देती है।"

"परन्तु भावना में बहने से पहले हमें एक बार सत्य की ओर भी देख लेना होगा जीवन।"

किस संसार के सत्य को देखने की बात कहते हो, आज के संसार के सत्य को देख कर तो तुम भी इसी संसार के हो जाओगे। हमें भविष्य की ओर देखना है, एक नए विश्व का निर्माण करना है। और भावना, यह भी तो सत्य का आधार ही है, बिना भावना के हम कभी सत्य को नहीं अपना सकते। तनिक देर रुक कर जीवन फिर कहने लगा, "आज के मजदूरों की दशा तुम देखते हो। दीन-दलितों की दशा तुम देखते हो। आज ये हँसते हैं, रोते हैं, किसके लिये? इन्हीं मुट्ठी भर पूँजीपतियों के लिये ही तो। ये पूँजीपति उनके टूटे हुये अरमानों की नींव पर अपने सुख का महल खड़ा करना चाहते हैं। उनके विष में बुझे हुये होंठ एक बार इनके होंठों से लग कर इनके शरीर का सारा रक्त खींच लेना चाहते हैं। यह पिसते हैं, पिसकर चीख उठते हैं और उन भारी-भरकम मशीनों के भीषण अट्टहास के नीचे इनके करुण चीत्कार दब जाते हैं। पूँजीपतियों की विलासमयी विशाल

...ाओं से दूर है उनकी दुनिया, जहाँ वैभव के निष्ठुर पावों ...
... कुचले जाते हैं, जहाँ गौरव की हथकड़ियाँ झनझन करके निर्बल
...में भय का कंपन पैदा कर देती हैं, जहाँ धनिकों के उन प्रासादों की
... दीवारें खुले मैदानों में पड़े निराश्रय दुखियों का परिहास किया करती
और तब विश्व गौरव से सर ऊँचा कर कह उठता है कि जीवन आँसू
नहीं है, क्रंदन तो नहीं है, जीवन तो है उन्माद, उल्लास। एक वन्धन
जो चहुँ ओर से उन्हें बाँधे है। मार्ग वन्द हो गये है। उन्हें जी...
...गा, परन्तु रोते हुये, सिसकते हुये, आहें भरते हुये। उनमें विद्रोह की
...ावना नहीं है, त्याग करना वे नहीं जानते। एक चिनगारी जल रही है,
वस वे उसी में भस्म हो जाना जानते हैं। इससे हट कर कोई जीवन मानो
उनके लिये जीवन ही नहीं है। फिर बताओ विपुल, इन दीन-दुखियों की
तनिक-सी मुक्ति के लिए तुमने कौन-सा मार्ग चुनने की ठान रखी है?"

विपुल मुस्कुरा पड़ा, "इस तरह आवेश में वह जाने से तो हमारी
समस्या का समाधान हो नहीं जायगा जीवन। आज हमें परिस्थितियों को
देख कर ही कदम उठाना है। यह सच है कि दमन की एक सीमा होती है
और जब मनुष्य दमन सहन नहीं कर सकता तो वह विद्रोह करता है!
अब दमन असह्य हो गया है, इसीलिए हमें भी विद्रोह करना है, हमें भी
क्रान्ति करनी है, परन्तु यह मत सोचो कि क्रान्ति का एक मात्र मार्ग हिंसा
ही है। शान्ति और अहिंसा से भी क्रान्ति हो सकती है। वस इसके लिए
संगठन की जरूरत है और वही संगठन करने के लिए हमें काम करना है।"

जीवन सीधा होकर वैठ गया। उसने दृढ़ स्वर में कहा, "यह पराजयवा...
है मित्र। जव हमें कोई काम करने से भय लगता है तो हमें ऐसे ही वह...
का सहारा लेना पड़ता है। आज विश्व का कोई ऐसा उदाहरण न...
जहाँ हितों के विना क्रान्ति हुई हो। रूस में क्रान्ति हुई, फ्रांस में ...
हुआ, हंगरी में ववंडर उठा, परन्तु क्या यह सव विना हिंसा और ...
के ही हो गये। क्या वहाँ के शोषित वर्ग ने विजयी होकर शोषण ...

वालों के रक्त का टीका अपने गर्वोन्नत भाल पर नहीं लगाया। उस क्रान्ति को तो तुम असफल नहीं कह सकते।"

"ऐसा मत समझो जीवन कि विश्व में क्रान्ति का केवल यही एक उदाहरण है। बुद्ध की क्रान्ति को देखो, गांधी की क्रान्ति को देखो, ईसा की क्रान्ति को देखो, क्या विश्व का कोई भी व्यक्ति कभी उस क्रांति को अस्वीकार कर सकता है। मैं धर्म में विश्वास नहीं करता, परन्तु यह जानता हूँ कि उनकी क्रान्ति कभी अवहेलना की चीज नहीं हो सकती, उसी मार्ग पर चल कर हमें अपनी क्रान्ति करनी है। परन्तु उस मार्ग पर चलते-चलते यदि कहीं हिंसा की जरूरत पड़ी तो तुम देखोगे जीवन, कि मेरा कदम उसमें सबसे आगे होगा।"

जीवन ने कोई उत्तर नहीं दिया!

कुछ रुककर विपुल ने फिर कहा, "आज हमें अपने संगठन की ओर देखना है। अभी उस दिन की बात तो भुलाई नहीं जा सकती। सुधाकर धन और पद के लोभ में मिल मालिकों से जा मिला। उसने हमें धोखा देने में भी संकोच नहीं किया। अब वह प्रबन्धकों से मिल कर हमारे विरोध में एक नया दल खड़ा कर रहा है। उसने कुछ अवसरवादियों को भी अपनी ओर मिला लिया है, जो लोगों में हमारे विरुद्ध प्रचार करते हैं। यदि ऐसा ही चला तो एक दिन सारे मजदूर प्रबन्धकों के हाथ की कठपुतली बन जायँगे। क्या तुमने सुधाकर जैसे कार्यकर्ता से ऐसी आशा की थी जीवन! परन्तु इस घटना का अभिप्राय क्या हुआ? यही न कि हम में संगठन की कमी है। हमने ऐसे अवसरवादी कार्यकर्ताओं का चुनाव किया है जो इन दीन-हीन मजदूरों का भार सँभालने में सर्वथा अयोग्य हैं। जब तक हमारे संगठन में ऐसे सड़े हुये भाग रहेंगे तब तक वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। हमें पहले इन्हीं सड़े हुए भागों को निकाल फेंकना है, केवल तभी हमारा भला हो सकेगा। हमें ऐसा संगठन करना है जिसमें इस टूट-फूट की गुंजाइश ही न रह जाय। अभी मैं ऐसे ही संगठन की बात कह रहा था।

मैं वर्षों से प्रयत्न कर रहा हूँ, तुम सब को भी एक साथ मिल
के लिए काम करना है। संगठन में बड़ी शक्ति है। परन्तु यह मत
तुम्हें पग-पग पर असफलता मिलेगी। इस असफलता से तुम्हें
नहीं होना है। तुम्हें अपने साथियों का विश्वास प्राप्त करके दृढ़
बढ़ना है। राह के काँटों को अपने लोहे के पाँवों से कुचल कर ही
सफल हो सकोगे जीवन।"

जीवन ने उत्तर नहीं दिया। वह जमीन पर आँखें गड़ाए चुपचाप सुन
था। उसे लगा जैसे जो कुछ भी विपुल ने कहा है उसमें एक शब्द भी
ठ नहीं है।

विपुल ने फिर कहा, "जब मैं प्रथम बार यहाँ आया तो जानते हो
मैंने तुम्हीं को क्यों चुना? मैंने देखा, तुम्हारे हृदय में लगन और दुखियों
के लिये पीड़ा है। मैं उस दिन प्रथम भेंट में ही जान गया कि तुम उनके
लिये सच्चे हृदय से काम कर सकते हो। उस दिन का मेरा वह विश्वास
आज भी धूमिल नहीं पड़ा है। इसीलिए मैं तुम्हीं पर यह भार छोड़ देना
चाहता हूँ।"

"जो कुछ भी आप कहेंगे, उसकी मैं कभी उपेक्षा नहीं कर सकता।"
जीवन ने धीमे स्वर में उत्तर दिया।

विपुल उठ खड़ा हुआ, "तो तुम्हें एक सप्ताह के भीतर ही मिल-
मालिकों से बात कर लेनी चाहिये। परन्तु उनसे बात करने से पहले अपने
साथियों की स्वीकृति लेना कभी न भूलना। मैं अभी जा रहा हूँ। लौट
में शायद दो सप्ताह लग जायँ। मुझे आशा है कि तुम अपने उत्तरदायि
को कभी नहीं भूलोगे। दो दिन के भीतर ही मजदूरों की सभा बुला
उनकी स्वीकृति ले लेनी है।"

जीवन ने मौन स्वीकृति दे दी। विपुल चला गया।

तीसरा ठिगना व्यक्ति अब तक चुपचाप बैठा था। वह अब
नहीं बोला। विपुल के जाते ही वह चुपचाप उठ कर घने अन
हो गया।

वत हो गया है ।

राकेश को कभी ऐसे जीवन का अनुभव नहीं हुआ । वह नारी को देव बन्धन मानता आया है । बन्धन मानकर उससे दूर रहता आया है । यह सब उसे विचित्र लगता है । वह नहीं जानता यह सब क्या हो रहा है, वह किस ओर बहा जा रहा है, किन्तु उसे लगता है कि नीलाकाश में असंख्य तारिकाओं के बीच उसका जीवन स्वच्छन्द रूप से उड़ रहा है । वहाँ कोई दुराव नहीं है, कोई अड़चन नहीं है ।

राकेश जाने कब तक विचारों में खोया रहा ।

दिन चढ़ आया । सूर्य की किरणें स्वर्ण रथ पर चढ़ कर प्रकाश बिखेरने लगीं । निरुपमा नाश्ता लेकर सामने आ खड़ी हुई । राकेश ने देखा । उसका मन एक विचित्र सी शान्ति और तृप्ति से भर उठा । वह मन ही मन मुस्कुराता उसकी ओर देखता रह गया ।

निरुपमा स्वर में अधिकार भरे कहने लगी, "दिन चढ़ आया लेकिन आप हैं कि अभी तक पड़े सो रहे हैं । ऐसा तो अब अधिक तक नहीं चलेगा । इतनी लापरवाही से जीवन बिताने को तो जीवन कहते । उठिए, हाथ-मुँह धो आइये । मैं नाश्ता ले आई हूँ ।" नि ने नाश्ता मेज पर रख दिया ।

राकेश अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ । बोला, "आज ज विचारों में खोया रहा निरुपमा कि उठना है, यह भी याद नहीं र

निरुपमा ने उत्तर नहीं दिया । वह पानी ले आई । राके मुँह धोया और नाश्ता करने बैठ गया ।

निरुपमा ने कहा, "मैं कुछ अच्छा नहीं बना पाती । जो हूँ, क्या उससे काम चल जाता है ?"

ागिन हूँ, मैं जानती हूँ जब से हम लोग यहाँ आये हैं आपकी चिन्ता
गई हैं। आप परेशान रहने लगे हैं। इसीलिए सोचती हूँ कि हमें भार
त कर इस घर में नहीं रहना चाहिये। एक दिन तो हमें जाना ही होगा,
दिन पहले या बाद में।" निरुपमा आगे नहीं बोल सकी। उसकी
निराश आँखें छत पर जम गईं।

राकेश एकदम से आतुर हो उठा। उसने कहा, "ऐसा कभी न कहना
निरुपमा, नहीं तो इसके लिए मैं तुम्हें कभी भी क्षमा न कर सकूँगा। सच
कहता हूँ, इन दिनों मुझे इतना सुख मिला है जितना जीवन में पहले कभी
नहीं मिला। मैं सोचा करता हूँ कि दुरूह पथ समाप्त हो गया है और
मंजिल सामने दीख रही है। अपने मन में इतनी उपेक्षा भर कर मेरे
स्वप्नों को छिन्न-भिन्न न कर डालना निरुपमा! तुम देना ही देना चाहती
हो, लेना कुछ भी नहीं चाहती। मैं चाहता हूँ कि तुम जितना दो उतना
लेना भी चाहो। मैं सदा से लापरवाह रहा हूँ। मुझे कभी किसी बात की
सुधि ही नहीं रहती। जाने कब अनजाने में ही मुझ से कौन सा अपराध
बन जाता है यह मैं कभी जान ही नहीं पाता। यदि मेरे किसी काम से
तुम्हें कष्ट हुआ है तो क्या उसके लिये एक बार मुझे क्षमा नहीं कर
सकती?"

निरुपमा को जाने क्या हो गया। उसने बढ़ कर राकेश के पावों की
धूलि माथे पर लगा ली, फिर बहुत ही धीमे स्वर में कहने लगी, "जो उप-
कार आपने हम पर किया है, उसका बदला तो जीवन के किसी भी पल में
चुकाया नहीं जा सकता। हमने तो केवल लिया ही लिया है, दिया
कुछ भी नहीं है। हमने जो पाया है यदि उसके बदले में आपको तनिक
भी सुख पहुँचा सकें तो बताइये क्या हमारा जीवन धन्य नहीं हो जायगा?"

राकेश ने निरुपमा की ओर देखा। उसके बाल खुल कर कन्धों पर फैले
थे। उसका मुँह सूखा था। उसकी धोती मैली होकर स्थान-स्थान से

अपना समझ कर मुझे क्षमा कर देना। एक बात कहता हूँ। तुम उसे अस्वीकार नहीं कर सकोगी।"

"कहिये।"

"प्रतिज्ञा करो कि तुम्हें जब जिस चीज की आवश्यकता होगी मुझ से कहने में नहीं हिचकिचाओगी। माँ के आँचल से तुमने जिन बातों का दुराव नहीं रखा, उन्हें मेरे सामने भी खुले हृदय से स्वीकार कर लोगी।"

"मैंने तो कभी आप से दुराव नहीं रक्खा, किन्तु मैं विधवा हूँ डाक्टर। फिर बताओ, कौन सा अधिकार लेकर मैं अच्छे वस्त्र पहन सकती हूँ, अच्छा भोजन कर सकती हूँ। मेरा जीवन तो जलने के लिए है, जलकर मर जाने के लिए है डाक्टर।"

राकेश निरुपमा के और पास खिसक आया। उसने दृढ़ स्वर में कहा, "कौन से अधिकार की बात कहती हो। बताओ तो किसने सधवा को शृंगार करने और विधवा को फटे वस्त्र पहनने का अधिकार दिया है। समाज के तिलकधारी ठेकेदारों की चिन्ता करके उनके पाँवों तले दबकर अपना अस्तित्व मिटा डालना तो कायरता है निरुपमा! निराशावाद को लेकर चलते रहने से तो हमारा देश और समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकेगा। हम सदा ही धर्म कहे जाने वाले अधर्म के शिकार होते रहेंगे। आज विश्व को नए समाज की आवश्यकता है। नए आदर्शों की जरूरत है। मुझे विश्वास है निरुपमा, कि नारी ही पुरुष का पथ-निर्देश कर सकती है। वह सबला है। एक बार उसे उठ कर विद्रोह की ज्वाला जगानी होगी। तब पुरुष उसके पाँवों पर लौटेगा। विश्व उससे दया की भीख माँगने दौड़ेगा। तुम विधवा हो निरुपमा, क्या केवल इसीलिए तुम्हारे जीते रहने के सारे अधिकार समाप्त हो जाएँगे? तुम्हारा पति आज नहीं है तो क्या इसे तुम्हारा अपराध कह कर तुम्हारी उपेक्षा की जायगी? नहीं, ऐसा नहीं होगा, ऐसा कभी नहीं होगा निरुपमा।'

निरुपमा अवाक राकेश की ओर देखती रह गई। उसने कहा, "आप जो कहेंगे वही होगा डाक्टर।" उसका कंठ रुँध आया। उसके नयनों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी।

तभी जाने कहाँ से आकर भयभीत काँपती हुई कल्पना राकेश से लिपट गई। उसका शरीर काँप रहा था। उसका श्वाँस जोर-जोर से चल रहा था। उसने विस्फारित नेत्रों से राकेश की ओर देखते हुये कहा, 'मैं यहाँ नहीं रह सकती, कभी नहीं रह सकती, मुझे बड़ा डर लगता है डाक्टर।" वह राकेश से चिपट गई।

राकेश को उस पर बड़ी ममता लगी। उसका मन एक बारगी दया से भर उठा। उसने उसे ऊपर उठाते हुये कहा, "जरा सुनूँ तो, कौन से भय के कारण मेरी कल्प इतना डर गई है।"

कल्पना का स्वर अब भी काँप रहा था। उसने कहा, "आपके ये मुर्दे मुझे जीवित नहीं रहने देंगे डाक्टर। अभी-अभी मैंने देखा उस सामने वाली मेज के मुर्दे को अपनी ओर हाथ उठा कर जोर से हँसते देखा है। मैं भय से काँप गई। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ। और आप जो हर समय उनके बीच घिरे रहते हैं, क्या आपको देख कर वे कभी इस तरह नहीं हँसते ?"

निरुपमा अभी तक मौन खड़ी भय से उसकी ओर देख रही थी। उसने कल्पना को पास खींच कर बाहों में भर लिया। उसने कहा, "मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कल्प कि वहाँ न जाया कर किन्तु तू हर समय कौतूहल से उन मुर्दों को उलट-पलट कर देखा करती है। फिर यदि किसी दिन तुझे कुछ हो गया तो इसका उत्तरदायित्व किस पर होगा ?" निरुपमा से बोला नहीं गया। उसकी आँखों में आँसू छलक आए। उसने कल्पना को अपने पास खींच लिया।

राकेश मौन खड़ा था। उसने जैसे कुछ भी नहीं सुना। उसे लगा
से विजय-पताका खण्ड-खण्ड होकर गिरी जा रही है, जैसे वह बहुत
पीछे छूट गया है। उन दिनों उसने अपने अनुसन्धान की कितनी अवहेलना
की है। इसके प्रति वह कितना उदासीन रहा है। उसे स्वयं पर आश्चर्य
होने लगा? यह सब कैसे हुआ। जीवन में जिस उद्देश्य को लेकर वह
चला है, क्या वह इन छोटी-छोटी बाधाओं से ही खत्म हो जायगा? नहीं
ऐसा कभी नहीं होगा। मंजिल अब दूर नहीं है। उसने कहा, "तुम्हारे
यहाँ रहने न रहने को लेकर मेरा अनुसन्धान तो छूट नहीं जायगा कल्पना।"
राकेश ने कमरे में जाकर भीतर से दरवाजे बंद कर लिये और निरुपमा
आश्चर्य से अवाक देखती रह गई। जो व्यक्ति एक क्षण पहले इतना
दयालु हो रहा था वह एक पल में ही इतना कठोर कैसे बन गया। य
बात प्रयत्न करने पर भी निरुपमा की समझ में नहीं आई। उसकी आँ
से छल-छल करके आँसू बहने लगे।

सभी मिलों में विजली की तरह यह समाचार फैल गया कि कल मजदूर मैदान में आम सभा होगी। वहुत दिन वाद किसी संगठन की वात सुन कर मजदूर उत्साहित होने लगे। किन्तु कुछ वृद्ध मजदूरों की आँखों की निराशा आज भी ज्यों की त्यों वनी रही। उनके मन जैसे आज भी शून्य हैं। वे किसी सुधार की कल्पना ही नहीं कर सकते। सभा की वात मिल-मालिकों ने भी सुनी। एक वार वे सतर्क हो गये। सभी मालिकों में इस संकट को टालने की वातचीत होने लगी। जो मिल-मालिक सदा एक दूसरे के विरोधी रहे थे वे सभी आज मिल कर एक हो गए।

दूसरे दिन मजदूरों के दल के दल मजदूर मैदान की ओर चल पड़े। आज उनके मन में एक नई स्फूर्ति थी, एक नया आनन्द था। कोई उनके शोषकों के विरुद्ध आवाज उठाने का प्रयत्न कर रहा है, केवल इसी की कल्पना मात्र से उन्हें महा सुख हो रहा था। अशंका और आनन्द की उत्तेजना से उनके मन में एक तूफान-सा उठने लगा।

मैदान खचाखच भर गया। कहीं तिल रखने को भी जगह नहीं रही। इतने आदमी इकट्ठे हुए कि जिसका शुमार नहीं। मंच पर जीवन और वही ठिगना व्यक्ति वैठा था। जीवन आज अस्वस्थ्य है। उसे दो दिन से जोर का ज्वर चढ़ा है। विपुल की अनुपस्थिति में आज उसे लाचार होकर सभा में आना पड़ा। उसका शरीर जैसे टूट कर गिर पड़ना चाहता है। किन्तु उसके मन में उत्साह है। उसके अन्तर में आशा का एक दीपक टिमटिमा रहा है। जिसे वह किसी भी मूल्य पर बुझाना नहीं चाहता।

उसने एक वार आँख उठा कर देखा। उसे दूर-दूर तक नंगे भूखे मजदूरों के नर-कंकाल दिखाई दिये। फटे हुए वस्त्रों में हड्डियों के ढाँचे-से

वह उठ खड़ा हुआ । उसने तेज आवाज में कहना आरम्भ

भाइयो, जिस उद्देश्य को लेकर आज की सभा बुलाई गई है वह तो सभी लोग जानते हैं । हमारा उद्देश्य उन मजदूर किसानों को मुक्ति ना है जो पूँजीपतियों के भारी-भरकम पावों के तले दब गये हैं । न्होंने अपना अस्तित्व भी उन्हीं पूँजीपतियों के अस्तित्व में मिला कर खो ा है । इस देश के किसान-मजदूरों की आज जैसी दशा है, वैसी शायद श्व के किसी भी देश के मजदूरों की नहीं । आज इस देश के अन्नदाता किसान मुट्ठी भर अन्न के लिए तड़प रहे हैं । उनके पास पहनने को कपड़े नहीं हैं, रहने को मकान नहीं है । क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? क्या उन्हें जीने का अधिकार नहीं है ? हम उन लोगों को बता देना चाहते हैं कि उन लोगों का कुत्तों की मौत मरना ठीक नहीं है । जीना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है । इसी अधिकार के लिए हमें लड़ना है । युगों से चली आई परम्परा से लड़ना है, तभी हमें मुक्ति मिलेगी, तभी हम कुछ पा सकेंगे ।"

जीवन जोर-जोर से बोल रहा था । उसकी स्वाँस फूलने लगी । वह एक क्षण को चुप हो गया । अच्छे वक्ता से जनता युक्ति-तर्क नहीं चाहती । जो बुरा है, वह क्यों बुरा है यह जानने की उसे उत्सुकता नहीं रहती । वह तो सिर्फ जो बुरा है, वह कितना बुरा है,अनेक विशेषणों के साथ उसी को सुनकर खुश हो जाती है । जीवन में यह गुण काफी मात्रा में मौजूद था । इसीसे जनता चंचल होने लगी ।

जीवन ने फिर बोलना शुरू किया । इस बार वह और भी अधि उत्साह के साथ बोल रहा था । इतने में ही मैदान के एक किनारे असंख्य दबे हुए कण्ठों से संत्रस्त कोलाहल उठ खड़ा हुआ और ही क्षण देखा गया कि बहुत से लोग धकम-धुक्का करके भागने की को कर रहे हैं और उन्हीं के बीच से रौंदते हुये बड़े-बड़े घोड़ों पर तीस-च

घुड़सवार पुलिस कर्मचारी तेजी से आगे बढ़ते आ रहे हैं। उनके हाथों में बन्दूक और कमर में पिस्तौलें झूल रही हैं। उनके सिर पर लोहे के टोप हैं और उनके चेहरे क्रोध से कठोर हो गये हैं।

बहुत से लोग अपनी जगह जमे हुए खड़े थे किन्तु अधिकांश भागने की कोशिश कर रहे थे।

जीवन ने चिल्ला कर कहा, "भाइयो, आज हमारी परीक्षा का दिन है। आप लोग जहाँ खड़े हैं वहीं खड़े रहें ?"

मजदूर रुक गए। वे उत्सुकता और भय से मंच की ओर बढ़ते हुए घोड़ों को देखने लगे।

पुलिस कर्मचारियों ने मंच के पास जाकर कहा, "हमें इस सभा को खत्म करने की आज्ञा मिली है। इसे तुरन्त ही खत्म कर देना होगा।"

जीवन ज्वर से पीड़ित था। उसके उदास चेहरे पर एक बार पीली छाया-सी पड़ गई। फिर भी उसने पूछा, "ऐसा क्यों करना होगा ?"

"सरकार का हुक्म है।" आगे वाले अफसर ने कुछ कठोर स्वर में कहा।

"किसलिए।"

"मजदूरों को बहका कर हड़ताल के लिए उकसाना अपराध है।"

"मजदूरों को व्यर्थ में उकसा कर रक्तपात कराना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम केवल उन्हें संगठित करना चाहते हैं ताकि वह एक होकर अपने अधिकारों की माँग कर सकें।

"सभा के उद्देश्य से हमें कोई सरोकार नहीं। हमें इस सभा को भंग करने की आज्ञा मिली है। इससे नगर की शान्ति भंग होने का भय है।"

"होगी, शान्ति भंग जरूर होगी," जीवन ने क्रुद्ध होकर कहा, "जिस देश के पूँजीपतियों ने गरीब किसान-मजदूर का खून चूसने के लिए इतना

षड्यंत्र खड़ा किया है, उस देश के गरीब वर्ग में विस्फोट ज...
उसके शोले सारे विश्व पर फैलेंगे......।”

“अफसर ने बीच ही में रोक कर कठोर स्वर में कहा “हम कुछ सुनना
...हीं चाहते। यदि तुमने विरोध किया तो हम तुम्हें गिरफ्तार कर
सकते हैं।”

उसने तनिक उत्तेजित होकर कहा, “जीवन विचलित नहीं हुआ। आप
समझते हैं कि गिरफ्तारियों के भय से हम अपने अधिकारों की माँग छोड़
देंगे। मनुष्य क्या जीने का अधिकार नहीं माँगेगा? दमन क्या स्वतंत्रता
प्रेम पर विजय पा लेगा? नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा।”

“चुप रहो।” अफसर ने कड़ककर कहा, “हमें सभा को खत्म करने
की आज्ञा मिली है, उसे भंग करने की नहीं। तुम्हें पाँच मिनट का समय
दिया जाता है। इतने समय में यदि तुम कुछ कहना चाहो तो कह सकते
हो। ठीक पाँच मिनट बाद सभा खत्म कर देनी होगी।”

जीवन ने इस समय को खोना नहीं चाहा। उसने देखा कि, पुलि...
ने सभा के चारों ओर घेरा डाल दिया है। मजदूर शंका से चारों ओर दे...
रहे हैं। उनके मन में एक विचित्र-सी बेचैनी भर गई है।

उसने फिर बोलना आरम्भ किया, किन्तु होठों से बाहर आते ही
उसके शब्द अस्पष्ट हो गये। आजकल बिना खाये-पिये ही उसके...
कट रहे थे। विपुल की अनुपस्थिति में उसे लाचार होकर सभा ...
पड़ा था। किन्तु अब थकान और अवसाद ने मानो उसे ऊपर से ...
आच्छन्न कर डाला। उसके अत्यन्त पाण्डुर मुख से जो व्य...
उससे स्पष्ट हो गया कि इस विशाल जनसमूह के बीच अब वह
भी नहीं बोल सकेगा।

उसने अत्यन्त धीमे स्वर में जो दो-चार शब्द कहे, वे

छ नहीं विगाड़ सकते। तब देश पर तुम्हारा राज्य होगा, तब
र तुम्हारा अधिकार होगा, तब तुम अपनी भूमि के मालिक होगे।"
स्वर दृढ़ था। वह तेज आवाज में कह रही थी, "क्या इस सत्य
म कभी नहीं समझोगे? इसमें देश-विदेश का प्रश्न नहीं, धर्म-जाति
श्न नहीं, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई का भी सवाल नहीं। यह प्रश्न है
त धनोन्मत्त मिल-मालिकों और उनके कारखानों में काम करने वाले
ले मजदूरों का। वे तुम्हारी शक्ति से डरते हैं। तुम्हारे उत्थान की बात
ुन कर वे भय से काँप उठते हैं? तुम्हारे परिश्रम की बुनियाद पर वे
अपनी वासना तथा व्यसनों का महल खड़ा करना चाहते हैं। तुम्हारे लिए
यह बात समझना क्या बहुत कठिन है। गरीब मजदूरों को जिन्दा रखने
की लड़ाई में क्या तुम अपनी पूरी शक्ति से शामिल नहीं हो सकते?"

"इन मिल मालिकों और पूँजीपतियों ने हमें बार-बार दुश्चरित्र
और व्यसनी कह कर निकम्मा बना दिया है। जब कभी भी हमारे उत्थान
की बात आती है वे हमारे चरित्र की दुहाई देकर, हमारी उन्नति के मार्ग
में बाधा खड़ी कर देते हैं। वे नहीं चाहते कि हमें शिक्षा, कपड़े और
मकान मिलें। वे नहीं चाहते कि हम एक बार भी सिर ऊँचा
करके कह सकें कि हम भी मनुष्य हैं। हमें भी जीने के लिए जीवन की
सुविधा चाहिए। वे तो हमें अपनी मिलों में पीस डालना चाहते हैं औ
हमारे रक्त से अपने परिवारों को सींचना चाहते हैं। किन्तु हम उन्हें ब
देना चाहते हैं कि हम बेवकूफ नहीं हैं। यदि अवसर मिले तो हम
बच्चा-बच्चा उन पूँजीपतियों से कहीं अधिक योग्य साबित हो सकता
आज एक विस्फोट की जरूरत है, एक संगठित विद्रोह की जरूरत है।
के युग में मनुष्य अकेला रह कर उन्नति नहीं कर सकता। सामूहिक
ही उसका उत्थान हो सकता है। इसके लिये हममें एकता की जरू
यदि हम एक होंगे तो दुनिया की बड़ी से बड़ी शक्ति भी हमारा

आज हमें प्रतिज्ञा करनी है कि जब तक हमारी देह में प्राण है, हम अपने अधिकारों के लिये लड़ते रहेंगे और हम या हमारी सन्तानें उन्हें प्राप्त किये बिना पल भर भी चैन से न बैठेंगी। मैं आपको फिर विश्वास दिलाती हूँ कि हममें शक्ति है और हम एक दिन जरूर सफल होंगे। भूखे मजदूरों की लगन और उनका बाहुबल सब कुछ करने में समर्थ है।"

चारों ओर भयंकर शोर होने लगा। हम प्रतिज्ञा करते हैं...हम प्रतिज्ञा करते हैं की ध्वनि आकाश में गूँज उठी।

उसी समय पुलिस अधिकारी चिल्लाया, "यह नहीं चल सकता, यह देशद्रोह है। सभा फौरन खत्म करनी होगी। और लगा मानों हजारों आदमियों के शरीर से टकराती हुई कहीं गर्मी की भभक उसके चेहरे पर आ लगी हो।"

उसकी बात खत्म होने से पहले ही मानो दक्ष-यज्ञ शुरू हो गया। विशाल भीड़ को कई भागों में विभक्त करके घोड़े दौड़ने लगे। चाबुक और लाठियाँ चलने लगीं और अपमानित दुःखी और त्रस्त मजदूरों का दल एकाएक ऐसा भाग खड़ा हुआ कि कौन किसके ऊपर पड़ा और कौन किसके पावों तले कुचला गया, इसका किसी को भी पता न चला।

देखते-देखते कुछ त्रस्त और घायल मजदूरों को छोड़ कर सारा मैदान खाली हो गया। मैदान के एक कोने से एक बड़ा ही दर्दनाक स्वर उठा और एक क्षण को लगा मानो समस्त संसार ही इस वेदना के अथाह सागर में लीन हो जायगा।

जीवन शून्य नेत्रों से भागते हुये नंगे भूखे मजदूरों की ओर निहार रहा था। उसे लगा जैसे आज वह पराजित हो गया है। मनुष्य पशु-बल से परास्त हो गया है। एक बार उसने सोचा कि इन दीन-हीन मजदूरों का कोई शक्ति कभी उद्धार नहीं कर सकती। ये मानो पिसने के लिए ही बने हैं और सृष्टि के अन्त तक सदा इसी भाँति पिसते चले जायेंगे। उसके मुख से अनायास ही निराशा की एक गहरी साँस निकल गई।

कुछ देर बाद टेढ़-मेढ़े मार्गों से गुजरती हुई गाड़ी एक स्थान पर गई। स्त्री ने द्वार खोलते हुए कहा, "हम लोगों को यहीं उतरना ा।"

जीवन ने देखा, यह तो वही स्थान है जहाँ उन लोगों की गुप्त मंत्रणाएँ हुआ करती हैं। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। वह अवाक उस महिला की ओर देखता रह गया।

स्त्री उसकी ओर देख कर हँस पड़ी, "आश्चर्य न करो मैं कौन हूँ और अचानक ही कहाँ से आ गई हूँ, यह सब दो क्षण बाद ही तुम्हें मालूम हो जायगा।"

जीवन ने एक शब्द भी नहीं कहा। वह चुपचाप दोनों स्त्रियों के पीछे-पीछे चलने लगा। तीनों व्यक्ति एक कमरे में घुस गये। जीवन ने देखा कि विपुल एक किनारे मेज पर झुका हुआ कुछ लिख रहा है।

उन्हें देखते ही वह उठ खड़ा हुआ। उसके मुख पर आज जाने कैसे प्रसन्नता और तेज झलक रहे थे। उसने महिलाओं को देख कर उत्साह कहा, "तुम्हीं हो, तुम्हीं हो न चित्रा। मैं जानता था, इतना साहस दृढ़ता हृदय में सँजो कर रखने वाली स्त्री, तुम्हारे सिवाय और दूसरी हो ही नहीं सकती। मैंने आज छिप कर सब कुछ देखा है और उससे दयह सुख और शान्ति से भर उठा है। किन्तु यह तो बताओ, तुम अचानक ही यहाँ आ कैसे पहुँची।"

सब लोग मेज के चारों ओर कुर्सियों पर बैठ गए। जीवन कुछ स्वस्थ हो चला था। वह मेज का सहारा लेकर एक प्रकार गया। दूसरी स्त्री भी चुपचाप बैठ गई। वह अब तक एक शब

बोली थी। चित्रा ने कहना आरम्भ किया, "उस दिन जब आसाम में आप गिरफ्तार हो गये तो हमारा विछोह हो गया। लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी। मैं उसी उत्साह से अपना काम करती रही। गुप्तचर विभाग के बड़े-बड़े अधिकारी हमारी खोज में दिन-रात एक किये हुये थे। वे तनिक सा सन्देह होते ही किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर लेते। चारों ओर दमन और अत्याचार का बोलबाला था। किन्तु हमारे साथी जान की बाजी लगा कर काम कर रहे थे। वे पीछे हटना नहीं जानते थे। उन्होंने आदिवासियों तथा निर्धनों को शिक्षा देनी आरम्भ की, उनके लिए स्कूल खोले। उनका मुफ्त इलाज किया और उनके बड़े से बड़े दुख को अपना समझ कर अपने कन्धों पर उठा लिया। धीरे-धीरे हमारे प्रति उन लोगों की सहानुभूति बढ़ने लगी। हमने उन्हें बताया कि वे भी मनुष्य हैं और उन्हें पशुओं की तरह मर नहीं जाना चाहिए। उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना है और जब तक वे न मिलें उन्हें चैन से नहीं बैठना चाहिये।

विपुल का हृदय गर्व से भर उठा। उसने कहा, "क्या सचमुच तुमने यह सब किया चित्रा ?"

'हाँ विपुल, केवल यही नहीं, हमने जो उन्हें सबसे बड़ी चीज सिखाई वह थी एकता, संगठन, जिसका उनमें सदा से अभाव था। वे एक साथ मिलकर कोई काम करना ही नहीं जानते थे। हमने उन्हें बताया कि संगठन के भीतर ही हमारी सारी शक्ति निहित है। यदि हम संगठित नहीं हैं तो लाख दो लाख होते हुये भी हम कुछ नहीं कर सकते। अलग-अलग रह कर हम कच्चे धागों की तरह टूट कर बिखर जायँगे।'

विपुल उत्सुकता लगी। उसने पूछा, "क्या उन लोगों ने इस सत्य को समझा चित्रा !"

जीवन आश्चर्य से चित्रा की ओर देखता हुआ चुपचाप सुन रहा था । ने कहा, "जब उस दिन तुम अचानक ही चले गये तो हम अनाथ हो, । हमें लगा जैसे मंजिल पर पहुँचने से पहले ही दीपक बुझ गया हो ों ओर अन्धकार छा गया । कहीं कुछ भी दीख नहीं पड़ा । लेकिन तभी ाने कहाँ से तुम्हारा आशीर्वाद एक प्रकाश-पुंज की तरह आकर हमारा थ प्रदर्शन करने लगा । तुम्हारे नयन पग-पग पर आकर हमें प्रेरणा देने लगे । जो कुछ हम लोगों ने वहाँ किया, यदि तुम अपनी आँखों से देखते तो विश्वास से कह सकती हूँ कि हम लोगों के छोटे से प्रयास पर गर्व किये विना न रह सकते ।

विपुल से रहा नहीं गया । उसने बीच ही में टोक कर कहा, "मैं जानता हूँ, मैं सब जानता हूँ चित्रा । जीवन के जिस क्षण से तुम्हें जाना है उसी क्षण से मन में यह विश्वास घर करके बैठ गया है कि तुम जो भी करोगी, उसे कभी अधूरा नहीं छोड़ सकती ।

चित्रा का मुख गम्भीर बना रहा । उसे अपनी प्रशंसा से गर्व न हुआ । उसने उसी प्रकार दृढ़ स्वर में कहा, "फिर शासन ने एक नई चा चली । अभी हम पूरी तरह संगठित भी नहीं हो पाये थे कि सरका लालच देकर हमारे कुछ साथियों को तोड़ लिया । फिर हमारे नाम व निकाले गए और हमें पकड़ने के लिए इनाम घोषित किये गये । हमा साथी गिरफ्तार हो गये । अन्त में लाचार होकर मुझे भागना प रंगून चली गई । एक वर्ष रंगून रहने के बाद जब मैं आसाम सुना आप जेल से भाग गए हैं । सच कहती हूँ उस दिन खुशी का नहीं रहा । मैंने सोचा कि आप चाहे जहाँ भी हों, अपने उद्देश्य विमुख नहीं रह सकते । मैं तभी आपको ढूँढने निकल पड़ी आप अचानक ही यहाँ मिल गए ।"

चित्रा चुप हो गई। जीवन अब भी मंत्रमुग्ध-सा बैठा उसकी ओर देख रहा था। उसके मुख से एक अस्फुट-सा स्वर निकला जिसे शायद किसी ने नहीं सुना। दूसरी स्त्री अब भी शून्य नेत्रों से छत की ओर निहार रही थी। विपुल ने फिर पूछा, "मधुरिमा और पंकज के सम्बन्ध में तुमने कुछ नहीं बताया चित्रा।"

एक क्षण को चित्रा का मुख मलीन हो उठा। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने दृढ़ स्वर में कहना आरम्भ किया, "उनके सम्बन्ध में कुछ कहना भी उनका अपमान करना है विपुल। वे महान आत्माएँ थे। मानवता के उत्थान के लिए उन्होंने अपने प्राण दे डाले, किन्तु फिर भी अपने पथ से पीछे नहीं हटे। जीवन के जिस उद्देश्य को लेकर वे चले, अन्तिम साँस तक भी उससे विमुख नहीं हुए। इतिहास में उनका नाम कोई नहीं जानेगा। आने वाली पीढ़ियाँ उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जान सकेंगी, लेकिन मानवता उन्हें कभी नहीं भुला सकती। वे मनुष्य की उन्नति के लिए ही जिए और उसी के लिए मर गए।"

कुछ देर रुक कर चित्रा ने कहा, "इस घटना को एक युग बीत गया लेकिन उस दिन की वह बात आज भी आँखों के सामने साकार बन कर खड़ी है। उसे जीवन में कभी भुलाया नहीं जा सकता। [illegible] घटना जैसे अमिट बन कर हृदय में बैठ गई है।"

हाथ-पाँव टूट गये, लेकिन वे वहाँ से हिले तक नहीं, गर्व से सर ऊँचा किये नारे बुलन्द करते रहे।"

"पुलिस का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया। अधिकारियों ने गोली चलने की आज्ञा दी। अब वे मंच के पास पहुँच गए थे। पंकज ने सुना। उसका चेहरा उत्साह में लाल हो गया। वह चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को अपने स्थान से न हटने का निर्देश देने लगा। चारों ओर से बवन्डर-सा उठ खड़ा हुआ। गोली चली। पंकज और मधुरिमा का शरीर छलनी हो गया। किन्तु वे अपनी जगह से हिले नहीं, उनके शरीर से लहू बह रहा था, लेकिन वे जोर-जोर से नारे लगा रहे थे। 'देश की जय', 'गरीब मजदूरों की जय।' सच कहती हूँ विपुल, उनके उत्साह को देख कर लगता था जैसे अब प्रलय होने में देर नहीं है।"

"गोलियाँ फिर चलीं और दोनों महान आत्माओं के शरीर वहीं ढेर हो गए। किन्तु अन्तिम समय तक उनके अधरों से यही स्वर फूट रहे थे 'देश की जय', 'गरीब मजदूरों' की जय। मैंने देखा तो मेरा हृदय व्यथा से पागल हो गया। आँखों से दो बूँद आँसू निकल कर पृथ्वी पर गिर पड़े। मैंने सोचा कि आज से पीछे इन्हें कोई नहीं जानेगा। लेकिन ये दोनों महान आत्माएँ पग-पग पर हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेंगी।" चित्रा का कण्ठ रुद्ध हो गया। वह एकबारगी ही चुप हो गई।

विपुल के अधरों से एक धीमी सी उसाँस निकल गई। उसने कहा, "जिस देश में ऐसे महान लोग हैं चित्रा, वह कभी पीछे नहीं रह सकता, मैं विश्वास से कह सकता हूँ कि एक दिन यह देश पनपेगा और जरूर पनप जायगा।"

कमरे में सन्नाटा छा गया। बहुत देर तक कोई कुछ नहीं बोला। फिर विपुल ने कहा, "तो आज हमारी 'मजदूर समिति' की फिर से स्थापना

लहरा रहा है, लेकिन वह उसे झूठे सुख और ऐश्वर्य के आवरण
छुपा कर रख लेना चाहता है, यदि अचानक ही किसी दिन वह आवरण
जाय तो मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप की कभी उपेक्षा नहीं कर सकता।
क दिन की बात तुम्हें बताऊँ। एक धनाढ्य वृद्धा अपने युवा पुत्र को
लये मेरे पास आई और कहने लगी, "मैंने उस दिन का गोली काण्ड
देखा है। मैंने देखा है कि मनुष्यों को किस तरह कीड़े-मकोड़ों की तरह
पीसा जा रहा है। मैं सोचती हूँ कि ऐसा क्यों होता है, हम लोग ऐसा
क्यों कर रहे हैं? ढेर के ढेर इन्सान भेड़-बकरियों की तरह कारखानों और
खेतों में काम किया करते हैं और उनकी गाढ़े पसीने की कमाई का लाभ
हम थोड़े से लोग क्यों उठाया करते हैं। मैं सोचती हूँ, तो विचित्र-सा
लगता है। इस बात में कहीं भी कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। एक
ओर जब धन और अन्न संग्रह की होड़ लगी है तो दूसरी ओर असंख्य
व्यक्ति नंगे भूखे रह कर प्राण दे देते हैं। विश्व में इस असमानता की को
सीमा नहीं, मैं पूछती हूँ कि क्या हम एक परिवार, एक समाज या ए
देश से ऊपर उठ कर मानव मात्र की भलाई की बात सोच ही नहीं सक
मैं अपनी विशाल मोटर में अकेली आराम से बैठी सड़कों से निकल
हूँ और देखती हूँ कि ढेर के ढेर नर-कंकाल और बीमार, वृद्ध और
पसीनों से लथपथ सड़कों पर भागे चले जा रहे हैं। इन्हें मेरी मो
स्थान क्यों नहीं मिलता। केवल मैं ही इतने बड़े स्थान की अधि
क्यों हूँ और ये नर-कंकाल इतने जर्जर होते हुये भी इतना परि
करते हैं? मुझे दुःख होता है, इस असमानता को मैं सहन नहीं क
मेरे पास सभी कुछ है, केवल इसीलिये इस सत्य की अवहेल
कर सकती।"

वृद्धा कहे जा रही थी; उसके मुख पर तेज झलक रहा

स्वर दृढ़ था। उसमें त्याग का गर्व था। उसने कहा, "उस दिन का गोली-काण्ड मैंने देखा। मैंने देखा कि उस दिन इतने व्यक्ति केवल इसीलिये गोली के शिकार हो गये कि वे गरीब थे और उनमें हमीं लोगों की तरह सुखी होने की आकांक्षा थी। किन्तु हम जैसे मुट्ठी भर लोगों के स्वार्थ ने उन्हें सदा के लिये मौत के मुँह में सुला दिया। हमने मान्य-अमान्य हथकंडों का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं किया। उस दिन दीन-दरिद्रों की रक्षा के लिए बनाई गई पुलिस ने भी उन्हीं का दमन किया।" वृद्धा की आँखों में आँसू भर आये। वह दयार्द्र कण्ठ से कहने लगी, "मेरा वृद्ध हृदय इन बातों को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे यह सब बड़ा विचित्र लगता है। लगता है जैसे सारा विश्व ही एक ढोंग रच कर चल रहा है। लोगों में कुटिलता की होड़ लगी हुई है। इनमें कहीं भी सरलता नहीं, कहीं भी वास्तविकता नहीं है। मैं सोचती हूँ कि क्या विश्व एक बार बदल नहीं सकता। तब हृदय के पीछे से कोई चिल्ला-चिल्ला कर कह उठता है। "एक बार स्वार्थ के आवरण के पीछे छिपी मनुष्यता को देखो, अहंकार और दम्भ की भावना को त्याग कर ही तुम उसके सच्चे स्वरूप को पहचान सकोगे।" बस केवल इसीलिये मैं आज तुम्हारे पास आई हूँ। मैं अपना युवा पुत्र और अपनी सारी सम्पत्ति तुम्हें भेंट कर देना चाहती हूँ। यदि इससे विश्व के एक दरिद्र परिवार का भी लाभ हो सका तो मेरा जीवन धन्य हो जायगा।" वृद्धा चुप हो गई। व्यथा से उसका कण्ठ रुँध गया। मैं अवाक् खड़ी उसकी ओर देखती रह गई। उस दिन मेरा मस्तक गर्व से ऊँचा उठ गया। मैंने सोचा कि मनुष्य अभी मरा नहीं है। उसमें अब भी जीवन शेष है। वह आज भी नवीन क्रान्ति की ज्वाला भड़का सकता है। मेरे नयनों में आशा की किरणें नाचने लगीं। न जाने कौन सी प्रेरणा के वशीभूत होकर मैंने वृद्धा के पाँव पकड़ लिये। उसके प्रति मेरे

से सहस्रों आशीर्वाद निकल पड़े। वृद्धा कुछ देर खड़ी रही, फिर
ी प्रशंसा का एक शब्द सुने विना ही वहाँ से चली गई।

कुछ देर रुक कर चित्रा ने कहा, "उस वृद्धा के हृदय परिवर्तन की तो
म अवहेलना नहीं कर सकते जीवन। क्या इस बड़ी दुनिया में उस दिन
की उस बात को कोई भी उपेक्षित कह सकता है। इसीलिये कहती हूँ कि
मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना सीखो, तभी तुम उसके सच्चे स्वरूप
को पहचान सकोगे। सन्देह और शंका में चिपटे रह कर तुम मनुष्य से
कभी कुछ नहीं पा सकते। "तो क्या आप पूँजीपतियों के सामूहिक हृदय-
परिवर्तन में विश्वास रखती हैं?" जीवन ने चित्रा के मुख पर आँखें
गड़ाकर पूछा।

चित्रा ने सहज स्वर में उत्तर दिया, "मैं मानती हूँ कि इन पूँजीपतियों
का सामूहिक हृदय-परिवर्तन नहीं हो सकता। यह समस्या तो केवल हिंसा
से ही हल हो सकती है। लेकिन वह समय आने तक क्या हम कुछ लोग
के हृदय-परिवर्तन का प्रयत्न भी नहीं कर सकते?"

जीवन ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु उसके मुख
लगा कि वह उस बात से अब भी सन्तुष्ट नहीं हुआ है। लता अ
चुपचाप बैठी थी। मानो उसे इन बातों से कोई सरोकार ही नहीं है
ठिगना सा व्यक्ति, जो जाने कब वहाँ आकर बैठ गया था, अब बात
होते ही बाहर अन्धकार में विलीन हो गया।

गती है। उसके पग उसी ओर बढ़ने को व्याकुल हो उठते हैं। किन्तु तभी
जाने कहाँ से आकर एक काली सी छाया उसका मार्ग रोक लेती है और वह
संकुचित-सी चुपचाप बैठी रह जाती है।

निरुपमा के सामने राकेश एक पहेली बन कर खड़ा है। उसकी हर
बात उसे विचित्र लगती है। अपनी साधना से जैसे वह तिल भर भी इधर-
उधर होना नहीं चाहता। निरुपमा नहीं जानती कि राकेश क्या चाहता है।
उसकी भाव-भंगिमा, उसके विचारों से वह अब तक भी परिचित नहीं हुई,
है। कोमल और सहृदय राकेश एक क्षण में ही इतना कटु क्यों हो उठता
है यह बात आज तक भी उसकी समझ में नहीं आई है।

कभी-कभी उसे लगता है जैसे एक कर्तव्य के वश होकर राकेश सभ
कुछ कर रहा है। किसी भी चीज का उसके सामने जैसे कोई महत्व
नहीं है। हम लोगों की उपस्थिति से उसे सुःख-दुख नहीं मिलता, वह
जैसे अपने कर्तव्य को ही उभार कर रख लेना चाहता है। उसके स
इच्छा अभिलाषाओं का महत्व नहीं है। वह इन बन्धनों को कभी स
करना ही नहीं चाहता।

निरुपमा राकेश का अधिक से अधिक हित करने का प्रयत्न कर
उसे इसमें सुख मिलता है। वह चाहती है कि जो राकेश उसे दे
उसका बदला भी चुकाये। राकेश ने उन लोगों को घर लाकर जो
है उसे वह जीवन भर नहीं भुला सकती। राकेश के कष्ट निवा
रात-दिन लगी रहती है।

कल्पना तो अल्हड़ लड़की है। उसने अभी देखा ही व
मान्य-अमान्य की परिधि से बँध कर रहना नहीं चाहती। वह अ
में किस समय क्या कह देती है और उससे राकेश को कै
इस बात से निरुपमा सदा ही चिन्तित रहती है। उसे जै

है ही नहीं। वह अपने भविष्य पर विचार कर ही नहीं सकती; किन्तु आज वह खुश है, और खुश है कि उसने आश्रय पा लिया है। और इस बड़ी दुनिया में भी उसका अपना कहने को कोई है। किन्तु निरुपमा के दुख से उसे कष्ट होता है। उसे चिन्तित देख कर वह उसके आँचल में मुँह छिपा लेती है और आँसू बहाने लगती है। उसे हँसाने के लिए भाँति-भाँति की अनुनय-विनय करती है और निरुपमा अन्तर में वेदना की ज्वाला छिपाये हँस पड़ती है। वह नहीं चाहती कि उस मातृ-विहीन नन्हीं सी बालिका को तनिक भी कष्ट हो।

आज भी निरुपमा को उदास देख कर कल्पना ने उसे मनाने के लिए अनेक बार हास्य-अभिनय किये हैं, अनुनय-विनय की है, भाँति-भाँति के मुँह बनाये हैं और फिर उसके आँचल में मुँह छिपा कर बिलख-बिलख कर रोई है। निरुपमा कल्पना का मन रखने के लिए अपने अंचल से उसके अश्रु पोंछ कर हँसी अवश्य है किन्तु इससे उसके मन की व्यथा तिल भर भी कम नहीं हुई। उसके नयन अब भी सावन-भादों की बदली बने हुये हैं। उसे लगता है जैसे पलकों का आवरण अश्रुओं के उस भयावह प्रवाह को रोकने में समर्थ नहीं हो सकेगा।

अतीत आज साकार बन कर उसके मन की सीमाओं का अतिक्रमण कर रहा है। बीते जीवन की एक-एक घटना रंग-बिरंगे रूप भर कर उसकी पलकों में घुमड़ रही है।

उसके पति उससे कितना स्नेह करते थे। वे जब तब उसे आलिंगनों में भर उसके आतुर अधरों पर जाने कितने चुम्बन अंकित कर दिया करते। उन चुम्बनों की गर्मी और उन आलिंगनों की कोमलता का उसे आज सहसा अनुभव हुआ। एक बार उसका शरीर रोमांचित हो उठा। उसे लगा जैसे कोई चुपके-चुपके आकर उसके हृदय को गुदगुदा रहा है। इस स्पर्श में उसे एक

प्रकार के आनन्द का अनुभव हुआ । उसके अंग-प्रत्यंगों में एक उन्माद
लगा । वह बेसुध-सी हो गई । उसने अपने दोनों हाथ कस कर वक्ष
ध लिए और उन्हें जोर जोर से दबाने लगी । आज उसे एक नए सुख
अनुभव हुआ, जिसे वह वर्षों से बिसरा बैठी थी । उसके मुख पर आनन्द की
अस्फुट-सी रेखा खिंच गई । उसने अपनी आँखें बंद कर लीं । उसे लगा
नों उसके चारों ओर सुख का एक अनन्त सागर लहरा रहा है । और वह
अपने प्रियतम के साथ उसी में तैरती चली जा रही है, दूर, बहुत दूर ।

आकाश पर बादल उमड़ कर उन्माद बिखेरने लगे थे । पुष्पों की सुगन्ध
समेटे ठंडी बयार बहने लगी थी । वर्षा की एक धीमी-सी फुहार पड़ कर
वातावरण को उतावला बना गई ।

निरुपमा का तन सिहर उठा । उसका मन बार-बार चंचल होने लगा ।
आकाश पर छाये श्यामल मेघ उसे एक नया संदेश देने लगे । उसे लगा जैसे
बहुत दूर क्षितिज के पार एक काली सी छाया हाथ हिला-हिला कर उसे
पास बुला रही है । भाँति-भाँति के प्रेम अभिनय करके उसका मन आकर्षित
कर रही है ।

निरुपमा का मन व्याकुल हो उठा । उसने अनायास ही अपनी बा
फैला दीं । उसके तन में उन्माद लहराने लगा । छाया पास आने लगी । निरुप
का मन धीरे-धीरे पुकारने लगा, यह कौन है । कितना आकर्षक, कि
मनहर । छाया पास आती गई । निरुपमा अपना अतीत, भविष्य, वर्तमान
कुछ भुला कर उसे निहारती रह गई । जाने किस अज्ञात हाथ ने आक
पर विचित्र सी मोहिनी बिखेर दी । उन्माद का सागर लहराता रहा

छाया आकर उसके पास बैठ गई, बिल्कुल पास, उससे सट
स्नेह से निरुपमा के शरीर को दुलराने लगीं । निरुपमा ने बाहें फै
उसे कस कर अपने हृदय से जकड़ लिया । उसके होठों पर किसी
श्वासों का अनुभव हुआ । कितना मादक है वह स्पर्श, कितना

होंठ अनायास ही खुल गये। वह बार-बार [illegible] करने लगी।

कोई दूर मधुर स्वरों में बाँसुरी बजाने लगा और, उसका [illegible] वातावरण को तोड़ कर उसके चारों ओर [illegible] होने लगा।

उसे लगा जैसे कोई [illegible] आकाश में [illegible] रहा है। कोई उसके हृदय के भीतर [illegible] कर उसके हृदय के [illegible] जानने का प्रयत्न कर रहा है। निरुपमा [illegible] मधुर हो उठा, वह मधुर [illegible] कण-कण में एक [illegible] होने लगा। [illegible] एक बार उसके मन का [illegible] सुधि न रही। उसके मुख से अनायास ही [illegible] स्वरों में निकला, "डाक्टर।"

निरुपमा ने एक बार अपनी [illegible] हृदय से निकाल फेंकना चाहा, किन्तु जितना भी उसने प्रयत्न किया उतना ही कोई उसके हृदय में [illegible] लगा। फिर वह सारे प्रयत्न बिसराकर उसी में लीन हो गई।

आकाश से बादल छट गये। [illegible] एकाएक शान्त हो गया। निरुपमा का शरीर [illegible] हो गया, उसके मुख से अनायास ही एक धीमी सी उसाँस निकल गई।

सामने द्वार पर बैठा एक कौआ काँव-काँव चिल्लाने लगा। निरुपमा ने देखा कल्पना जाने कब से खड़ी उसे निहार रही है। वह [illegible] कर उठ बैठी। कल्पना को पास खींच कर कहने लगी, तू यहाँ कब से खड़ी है कल्प! मैं तो जाने कैसे [illegible] में खोई रही कि तुझे देखा भी नहीं। कल्पना ने निरुपमा के आँचल में मुँह छिपा लिया। उसके आँसू [illegible]

। कब तक चलेगा जीजी, । अपनी सुधि विसरा कर तुम जाने कौन
में रहने लगी हो । बताओ तो, क्या इस तरह उदास और दुखी
सारा जीवन बिता देने का साहस तुम में है ?
जीवन में अब बच ही क्या रहा कल्प, जो उसे विताने के लिये सा
ना पड़ेगा । और मैं तो दुखी नहीं हूँ, तू नाहक ही मेरी चिन्ता में घु
रही है । क्या तू नहीं जानती कि अपनी कल्प को अकेला छोड़ क
भी तो नहीं सकती ।

कल्पना के आँसू वह कर निरुपमा का आँचल भिगोने लगे । वह सिसकियाँ
ते हुये बोली, तुम इस तरह अपने को दिन-रात कोसा करोगी जीजी, तो
एक दिन सचमुच ही मैं मर जाऊँगी ।

निरुपमा को बड़ा दुःख हुआ । उसने कल्पना को उठा कर हृदय से
लगा लिया । आज कल्पना को बाँहों में भर कर उसका मन शान्ति से परिपूर्ण
हो उठा । उसने कहा, तू चाहती है तो अब मैं कभी दुखी नहीं हूँगी । कभी
आँसू नहीं बहाऊँगी । जो मेरी कल्प कहेगी उसके खिलाफ एक काम भी नहीं
करूँगी ।

कल्पना की बाल अल्हड़ता में व्यथा के लिए स्थान नहीं है । तनिक-सा
सहारा पाते ही वह खुश हो गई । उसने आँसू पोंछते हुये कहा, जो मैं कहूँगी
वही करोगी जीजी !

निरुपमा को अनायास ही हँसी आ गई । उसने कहा, हाँ, जो भी आज्ञा
तू देगी, उसकी उपेक्षा मैं नहीं करूँगी ।

कल्पना ने उत्साहित होकर कहा, तो चलो जीजी, आज चल कर क
घूम आयें । घर में पड़े-पड़े मन नहीं लग रहा है ।

लेकिन अब तो अँधियारा घिर रहा है कल्प, इतनी रात गये हम
जायेंगे ?

किन्तु कल्पना उठ खड़ी हुई। उसने कहा, नहीं जीजी, मैं डाक्टर को भी साथ चलने के लिए मना लूँगी। मैं जानती हूँ, मैं कहूँगी तो वे इन्कार नहीं करेंगे।

निरुपमा ने नोट [illegible] दे दिये और कल्पना हास्य की साकार प्रतिमा सी उछलती हुई चली गई।

डाक्टर अपनी साधना में लीन है। उसे प्रकृति के सौन्दर्य और दिन के उतार-चढ़ाव का जैसे कुछ भी ज्ञान नहीं। वह तो उस अँधेरे कमरे में ही अपने संसार की सीमा बाँध लेना चाहता है। वह चाहता है कि इससे बाहर की जो दुनिया है उससे उसका कोई प्रयोजन न रहे। वह एक स्वप्न देखा करता है, एक विचित्र स्वप्न, जब वह मृत्यु पर विजय पा लेगा। जब विश्व के किसी भी व्यक्ति को मौत का डर नहीं रहेगा। तब एक नये विश्व का निर्माण होगा। तब एक नया समाज और एक नई संस्कृति जन्म लेगी तब मनुष्य की मान्यताएँ भिन्न होंगी। उसके नियम, विधान भिन्न होंगे वह संसार चाहे जैसा भी हो किन्तु उसकी नवीनता की कल्पना करके राकेश का मन आज भी अलंकृत हुआ करता है।

वह अपना जीवन देकर भी अपने अनुसन्धान में सफल होना चाहता है। किन्तु इन दिनों उसके मन में जाने कैसी अज्ञात सी जिज्ञासा उठ खड़ी हुई है। उसे लगता है जैसे उसका मन कुछ उचाट रहने लगा है। वह क्या चाहता है यह उसे स्वयं भी मालूम नहीं। किन्तु उसे लगता है जैसे उसके मन में एक विचित्र-सी व्याकुलता भर गई है। जाने किस अज्ञात के प्रति उसके मन में एक विशेष-सा आकर्षण जम कर बैठ गया है। वह सोचता है कि वह आकर्षण कैसा है? कौन है जो वह उसे साधना पथ से दूर हटाये लिये जा रहा है। किन्तु उसकी कुछ भी समझ में नहीं आता। जितना भी वह इस रहस्य को जानने का यत्न करता है उतना ही अधिक एक शून्य-सा उसके चारों ओर घुमड़ने लगता है और उस विशाल शून्य में उसे कहीं भी कोई दिखाई नहीं पड़ता। मुर्दों पर झुके-झुके जब तब वह रुक कर जाने क्या सोचने लगता है। वह अनुभव करता

है कि उसके मन में कुछ है, लेकिन वह क्या है यह कभी भी उसके सामने साकार नहीं हो पाया।

बैठे-बैठे राकेश खीझ उठता है। वह सब कुछ छोड़-छाड़ कर अपने काम में लग जाना चाहता है। लेकिन जैसे उसके मन का अनुराग उसे छोड़ना ही नहीं चाहता और वह फिर उसी में लीन हो जाता है।

आज भी इसी उधेड़-बुन में राकेश जाने कब से बैठा है। पूर्वी क्षितिज से चन्द्रमा निकल कर कब उसके सामने वाली खिड़की से झाँकने लगा उसे इसका भी पता नहीं।

इसीलिए आज जब कल्पना ने उसका हाथ पकड़ कर झकझोड़ा तो वह एकदम चौंक उठा। एक क्षण के लिए वह एक टक कल्पना को देखता रह गया। उसके मुख से कोई शब्द नहीं निकला।

उसकी दृष्टि के सामने कल्पना सकुचा गई। एक क्षण को वह भूल गई कि उसे क्या कहना है। आज राकेश की आँखों में उसे जाने कैसा भाव दिखाई दिया कि वह शर्म से गड़ गई। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने को सम्भाल कर कहा, "आज एक प्रार्थना करने आई हूँ मानियेगा ?"

राकेश को बड़ा भला लगा। उसने कहा, "कहो।"

"जीजी आज सुबह से ही उदास बैठी हैं," कल्पना ने संकुचित होकर कहा, "तनिक देर कहीं घूम आयेंगे तो उनका मन हल्का हो जायगा। क्या आप थोड़ा-सा समय दे सकेंगे ? देखिए बाहर कैसी सुन्दर चाँदनी खिली है।"

राकेश ने आकाश पर मुस्कराते हुए चाँद की ओर देखा। उसका मन एकबारगी रोमांचित हो उठा। प्रकृति का सौन्दर्य उसके मन पर अपना मायाजाल बिछाने लगा। उसे लगा मानों कमरे में पड़े हुये मुर्दों से भयंकर दुर्गन्ध उठ रही है। वहाँ पल भर भी ठहरना उसके लिए दूभर होने लगा। उसने सोचा कि कल्पना की अनुनय-विनय को अस्वीकार करने का उसमें साहस नहीं है। आज इन मातृविहीन बालिकाओं के प्रति उसके मन में

का एक अथाह सागर लहराने लगा। उसने धीमे स्वर में कहा,
मा को सुखी करने के लिए मैं जो भी कर सकता हूँ, अवश्य करूँगा
ा ! एक दिन जो प्रतिज्ञा की है यदि उसे पल भर भी निभा सका तो
कहता हूँ मेरा जीवन पूर्ण हो जायगा।" आगे क्या कहे ? राकेश को
भी नहीं सूझा। इन आवश्यक वाक्यों का अर्थ उसकी खुद भी समझ
नहीं आया। उसे लगा मानों किसी अज्ञात शक्ति ने अनायास ही उसके
न की भावनाओं को उसके मुख से प्रसारित करा दिया है।

कल्पना उत्साहित होकर निरुपमा के पास दौड़ गई। उसे आशा थी कि राकेश उसकी बात को अस्वीकार नहीं करेगा, किन्तु वह इतनी जल्दी अपनी स्वीकृति दे देगा, इस बात का उसे विश्वास नहीं था। अब उसकी खुशी की सीमा न रही। दो क्षण बाद ही वह निरुपमा को लेकर उपस्थित हो गई।

नीलाकाश से पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना बिखेरने लगा। सड़क के दोनों किनारों पर दूर-दूर तक फैली हुई सरु के लम्बे वृक्षों की पंक्तियाँ चाँद के श्वेत शीतल प्रकाश में चमकने लगीं। उन्हीं वृक्षों की छाया में तीनों व्यक्ति बहुत दूर तक निकल गये।

कल्पना बालकपन का औत्सुक्य लिये आगे-आगे दौड़ी जा रही थी। उसके मन की चपलता जैसे सीमा में बँध कर चलना नहीं जानती। स्वतं
पक्षी की भाँति वह सीमाहीन आकाश में विचरना चाहती है। वह आका
में मुस्कराते चाँद और वृक्षों पर चहचहाते पक्षियों को देखती और खिल-खि
करके हँस पड़ती।

किन्तु निरुपमा को इस सजीव सौन्दर्य ने भी प्रभावित नहीं कि
वह अब भी वैसी ही उदास बनी रही। राकेश उसके साथ-साथ च
था। लम्बे-लम्बे वृक्षों की छाया दूर तक फैल गई। चन्द्रमा लतिक
पीछे छिप कर आँख-मिचौनी करने लगा।

बहुत देर तक दोनों चुपचाप चलते रहे। फिर राकेश ने कहा,

कह रही थी कि तुम सुबह से ही उदास बैठी हो। मैंने देखा है कि जब तब तुम्हारा हृदय चिन्ता से भर आता है। तुम्हारे नयनों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। क्या मैं जान नहीं सकता निरुपमा, कि तुम्हें क्या दुख है।"

निरुपमा ने राकेश की ओर देखा। उसके मुख पर दया का विचित्र-सा भाव अंकित था। निरुपमा ने बहुत धीमे स्वर में कहा, "आप मेरे लिए चिन्तित न हुआ करें डाक्टर। मैंने तो जिस दिन जन्म लिया उसी दिन विधाता ने मेरे भाग्य में दुख लिख दिया, फिर बताइये तो, कौन सी शक्ति के बल पर मैं उन संस्कारों से मुक्त हो सकूँगी।"

राकेश को बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा, "मैं सोचता हूँ तो लगता है कि इस सबका दोष मुझ ही पर है। मैंने सदा ही तुम्हारी उपेक्षा की है। मैंने कभी तुम्हारा तनिक-सा भी ध्यान नहीं रखा। कभी सहानुभूति के दो शब्द भी नहीं कहे। जो पहले ही इतना व्यथित है क्या उसके प्रति मेरा यह अन्याय नहीं है, निरुपमा ?"

"ऐसा न कहिए डाक्टर, आपके आश्रय में मुझे जितना सुख मिला, उतना पहले कभी नहीं मिला था। यहाँ आकर मेरा मन शान्ति से परिपूर्ण हो उठा है। मेरे सारे विकार समाप्त हो गये हैं। अतीत और भविष्य को भुला कर वर्तमान में रहना अब मैंने सीख लिया।"

"अच्छा आज एक बात पूछता हूँ, सच-सच बताओगी," राकेश ने प्रश्न किया।

निरुपमा एक बार संकुचित हो उठी। जाने राकेश कैसा प्रश्न करने जा रहा है। उसने कहा, "पूछिए।"

"तुम शादी क्यों नहीं कर लेतीं निरुपमा," राकेश हठात ही कह बैठा।

निरुपमा लाज से गड़ गई। रात्रि के इस एकान्त अँधेरे में एक पुरुष उससे अनायास ही यह क्या प्रश्न कर बैठा। उसके हृदय का रक्त धमनियों में बजने लगा। फिर उसने अपने को सम्भाल कर कहा, "जो बात होने

है, उसका क्या कह कर उत्तर दूँ डाक्टर।"
वाली नहीं है कह कर ही क्या इस प्रश्न को टाल दोगी,
।"
मैं विधवा हूँ डाक्टर, आपके समाज में मेरे लिये कभी कोई स्थान
सकता।"

"यदि हो सके तो।"

"मैं तब भी उसे स्वीकार नहीं करूँगी। यदि जीवन में सुख नहीं है तो उसे जबरन ही प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकती।"

निरुपमा का स्वर दृढ़ था। राकेश स्तब्ध रह गया। एक वार वह आश्चर्य से उसके मुख की ओर देखने लगा। दूर किसी वृक्ष पर कोई उल्लू अपने कर्कश स्वर में चीख उठा। निरुपमा ने फिर कहा, "मैं दया का पात्र वनकर किसी पुरुष का सहारा पाना नहीं चाहती। मेरे मन की यह भावना कि किसी ने मुझ पर दया करके ही मेरा हाथ पकड़ा है, मुझे कभी चैन से नहीं बैठने देगी। मैं दासी वन कर नहीं, साथी वन कर रहना चहती हूँ डाक्टर। मैं विधवा हूँ, मेरे मन की यही भावना मुझे कभी ऊपर उभरने नहीं देगी।"

यदि कोई पुरुष तुम्हें बराबरी का स्थान देकर प्राप्त करना चाहे तो क्या तुम उसे भी अस्वीकार कर दोगी निरुपमा ?

"पुरुष पर संशय न भी करूँ किन्तु फिर भी अपने मन के संस्कारों को मैं बदल नहीं सकती। मेरे अन्दर जो एक हीन-भावना जम कर बैठ गई वह तो कभी भी मन से दूर नहीं हो सकती। मेरा मन इस बात को कभी नहीं भुला सकता कि ज़िस पुरुष ने मुझे आश्रय दिया है उसने केवल करके ही ऐसा किया है। फिर वताइये कि उस दिन का वह जीवन जीवन से क्या कभी अधिक सुखी रह सकेगा।

"किन्तु जीवन का एक दूसरा पहलू भी है निरुपमा, जिसकी

मूर्ति केवल राकेश ही कर सकता है। उसने निरुपमा की दोनों बाहें
उठाते हुये कहा, "जीवन के कठिन पथ पर चलते-चलते किस समय
ही जाता है, इसका हम कभी भी अनुभव नहीं कर पाते निरुपमा।
बहुत दुर्बल हैं। हमारे सामने विशालकाय अन्धकार छाया हुआ है। इसी
कहता हूँ कि यदि जीवन की कुबेला में तुम पर कभी कोई संकट आया तो
प्राण देकर भी तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम भी प्रतीक्षा करो कि यदि कोई
सा दिन आया तो तुम मुझे याद करना नहीं भूलोगी।"

"क्या तुम सचमुच ही मेरा मार्ग-प्रदर्शन करने चले आओगे
डाक्टर ?" निरुपमा का स्वर काँप रहा था उसका स्वर रुँध गया।

राकेश ने कहा, हाँ निरुपमा, जीवन की नौका मझधार में पड़ कर किस
ओर बही जा रही है,काल के अन्धकार में स्वयं नाविक को भी इसका पता
नहीं चलता। उस समय माँझी आँख मूँद कर नौका को स्वतंत्रता से बहने
के लिए छोड़ देता है। यदि तुम्हारे जीवन की नौका भी किसी दिनइसी तरह
मझधार में फँसी तो मैं किनारे का प्रकाशपुंज बनकर अवश्य ही तुम्हारा मार्ग
प्रदर्शन करने आऊँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारा दुख सदा ही मुझे
दुखी करता रहेगा।

निरुपमा के मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। उसकी आँखों से आँ
बहने लगे। उसे लगा कि वह बहुत दुर्बल है, बहुत छिछली। उसने अ
यास ही आँचल सर पर खींच कर अपना माथा राकेश के चरणों पर
दिया। उसने अपने दोनों हाथों से राकेश के पाँव जकड़ लिए और उन्हें
जोर से वक्ष पर दबाने लगी। तल्लीनता के कई क्षण निकल गए।
बादलों के आवरण को हटा कर मुस्कुराने लगा। पास के किसी वृक्ष
पक्षी बड़े मधुर,स्वरों में गा उठा।

बहुत देर बाद राकेश ने कहा, "उठो निरुपमा, कल्पना ब
निकल गई है।"

निरुपमा आँसू पोंछ कर उठ खड़ी हुई। दोनों चुपचाप चलने लगे। बहुत देर तक कोई भी एक दूसरे से नहीं बोला। अल्हड़ सी कल्पना कौतूहल से प्रकृति को देखती अब भी आगे-आगे भागी जा रही थी। पीछे अनायास ही आज कौन सी नवीन घटना घट गई है इसकी उसे तनिक भी सुधि नहीं।

सामने ही मौलसिरी के फूल चाँद की श्वेत ज्योत्स्ना में जगमगा रहे थे। वहीं पड़ी हुई एक बेंच पर कल्पना बैठ गई। उसने देखा, डाक्टर और निरुपमा चुपचाप चले आ रहे हैं। उसने वहीं से चिल्ला कर कहा, "देखो जीजी ये फूल कितने सुन्दर हैं। सफेद चाँदनी में ये कैसे लग रहे हैं।"

निरुपमा कल्पना के पास आकर बेंच पर बैठ गई। उसने बहुत धीमे स्वर में कहा, हाँ कल्प, आज प्रकृति सचमुच बहुत सजीव हो उठी है।

कल्पना को सुख मिला। उसने सोचा कि निरुपमा का मन शान्त हो गया है। वह इसका श्रेय स्वयं पर लेकर आनन्द का अनुभव करने लगी।

राकेश अकेला खड़ा वृक्ष से मौलसिरी के फूल तोड़ रहा था। आज उसके सामने अनायास ही जीवन का एक नया अध्याय खुल पड़ा है जिसे वह प्रयत्न करने पर भी अपने अनुकूल नहीं बना पा रहा है वह सोच रहा है कि निरुपमा बड़ी विचित्र नारी है। वह कभी पराजित होना नहीं चाहती, कभी किसी के आगे आँचल फैलाना नहीं चाहती। वह तो सब कुछ दे देने के बाद भी यही सोचा करती है कि उसे अभी कुछ और देना चाहिए। दुखों से उसे स्नेह है, वह उन्हें किसी भी मूल्य पर छोड़ना नहीं चाहती।

निरुपमा एक विचित्र पहेली बन कर राकेश के सामने आ खड़ी हुई। और वह उसी में खोया चुपचाप फूल चुनता रहा।

कल्पना ने फिर पूछा, "मौन क्यों हो जीजी, क्या बहुत थक गई हो।"

निरुपमा को बड़ा भला लग रहा था। उसने कहा, "नहीं कल्प, अभी तो चलना ही शुरू किया है। क्या अभी से थक जाऊंगी।" उसने राकेश की ओर देखा। वह अब भी फूल तोड़ रहा था। निरुपमा उसके पास जा खड़ी हुई। उसने बहुत धीमे स्वर में कहा, "अब चलो डाक्टर, बहुत देर

गई।"

राकेश ने निरुपमा को देखा। उसके बाल खुले थे। उसका आँचल वक्ष से हट कर नीचे गिर गया था। दिन भर रोते-रोते उसकी आँखें सूज कर अधखुली हो आई थीं। एक बार राकेश उस अपरूप यौवन को देखता ही रह गया। चन्द्रमा का हास और समीर का शीतल स्पर्श एक बार उसके हृदय को गुद गुदा गया। पक्षियों के कलख ने प्रकृति के हृदय में एक विचित्र मनहर संगीत की रचना कर दी और राकेश ने ढेर के ढेर फूलों को निरुपमा के आँचल में डाल दिया। फूल बिखर गये। बेसुध सी निरुपमा ने उन्हें समेट कर माथे से लगा लिया। चन्द्रमा एक बार फिर आँख मिचौनी करने लगा और वे दोनों एक दूसरे को अपलक निहारते रह गये।

१३

सारे नगर में यह समाचार बिजली की तरह फैल गया कि अमुक दिन मजदूरों के प्रतिनिधि मिल मालिकों से मिल कर उनके सामने अपनी माँग पेश करेंगे। मजदूरों के चेहरे खुशी और स्फूर्ति से चमकने लगे। उनकी आँखों में आशा की एक नई झलक दिखाई देने लगी। उन्हें एक बार लगा मानों अब उनके सारे दुख-दर्द का अन्त हो जायगा। वे अनायास ही अच्छे दिन आने के स्वप्न देखने लगे। बहुतों ने तो मन ही मन हजारों-लाखों हवाई महल बना डाले।

युवक मजदूरों का उत्साह बढ़ गया। वे अब गर्व से सीना तानकर चलने लगे। मिल मालिकों को उनकी बात सुनने पर बाध्य होना पड़ा है, यही एक बात उन्हें बार-बार साहस प्रदान करने लगी।

किन्तु कुछ वृद्ध मजदूरों की आँखों में अब भी निराशा झलक रही थी। वे युवकों के उत्साह को देखते और मलीनता हँसी-हँस देते। उनके चारों ओर घोर अंधकार छा जाता। वे अपने मुख की हड्डियों पर उगे लम्बे-लम्बे सफेद बालों को हाथ से सहलाते हुये कहते, "हमने जमाना देखा है, हमने देखा है कि दुनियाँ कभी नहीं बदलती। तूफान उठता है और शान्त हो जाता है। वह पृथ्वी का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता।"

युवक सुनते तो भौंहें सिकोड़ लेते। वृद्ध कहते, "मजदूर युगों से पिसता आ रहा है और प्रलय के अन्त तक पिसता रहेगा। पूँजीपति उसे अपने भारी भरकम पावों के तले सदा ही पीसते जायेंगे। मजदूर तड़पेगा, वेदना से चिल्लायेगा और अन्त में प्राण दे देगा। हमने युग देखे हैं, मजदूरों के

ह देखे हैं, किन्तु उसे कभी सफल होते नहीं देखा। हमने तो उसे सदा
यातरणा में चिल्ला-चिल्ला कर मरते हुये देखा है। मज़दूर मनुष्य नहीं
वह पत्थर है। वह मशीन है, जिसे ये मुट्ठी भर पूँजीपति अपने इशारें
नचाया करते हैं क्योंकि मजदूर नाचता है, क्योंकि वह विरोध नहीं
र सकता।"

युवक इससे निरुत्साह नहीं होते, उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल
लगती हैं, उनके स्वर से हुंकार उठती। वे कहते, "अब समय बदल गया
है। विश्व स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है। मानव की हथकड़ियाँ टूट
रही हैं। जीवन मुक्ति के लिए तड़प रहा है। अब ये मुट्ठी भर पूँजीपति
अपने स्वर्ण के सुनहरे जाल में निरीह मजदूरों को अधिक दिनों तक नहीं
जकड़ सकते। अब मनुष्य-मनुष्य पर शासन नहीं कर सकता। आज हम
दिखा देना चाहते हैं कि हम पशु नहीं हैं, हम भी मनुष्य हैं, अब हम उनका
जुआ अपने कन्धों पर अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकते। देश का
उत्पादन हम करते हैं, इसलिये मिलों पर हमारा अधिकार है। हम पूँजी-
पतियों को उनका हिस्सा दे सकते हैं, वे केवल थोड़े से धन के बदले में
इस प्रकार हमारा शोषण नहीं कर सकते। आज दुनियाँ तरक्की कर रही है
इंसान आगे बढ़ रहा है। फिर हम ही क्यों पीछे रह कर बर्बरता की च
में पिसते रहें। अब समय आ गया है जब हमें आगे बढ़ कर विश
ज्वाला जगानी होगी। केवल तभी हमारा कल्याण हो सकेगा।

किन्तु वृद्धों के दुखों पर तब भी मलिनता नाचती रहती। यु
इन लम्बे-चौड़े भाषणों का उन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता।
अनर्गल बातें कह कर हँस देते। उनका हृदय बुझ चुका है।
निरन्तर निराशा और अभाव सहते-सहते वे शिथिल पड़ गये
किसी नवीनता की वे कल्पना भी नहीं कर सकते। उन्होंने अपन
दीर्घकाल में सहस्रों बार आशा की किरणें उगती और अस्त होत

वे अपने अनुभवों के बल पर चिल्ला-चिल्ला कर कहना चाहते हैं कि ये सब झूठ है, मिथ्या है, इन आशाओं का कोई महत्व ही नहीं। वे कहते, "हमारे जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आए हैं जब भयंकर आँधियाँ उठी हैं। बवंडर उठे हैं, किन्तु इन पूँजीपतियों का वे कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। हमने मजदूरों की विश्व को दहला देने वाली हुंकार सुनी है, किन्तु वे सभी तूफान की भाँति शान्त हो गई। हम लोगों का वे कुछ भी भला नहीं कर सकी, और ये मुट्ठी भर पूँजीपति चट्टान की भाँति गर्व से सर ऊँचा किये खड़े रहे। आज भी परिस्थिति बदली नहीं है। हम लोगों की भावनाएँ जरूर बदल गई हैं। लेकिन हममें शक्ति कहाँ है। लड़ने का साहस कहाँ है? हम तो दुर्बल हैं और सदा दुर्बल ही बना रहना चाहते हैं। वृद्धों के झुर्री पड़े मुख पर एक विचित्र सी कठोरता आ जाती। उनकी आँखों में सूनापन छा जाता और वे एक दम मौन हो जाते।

युवक उनके इन शब्दों के पीछे छिपे भारी व्यंग को भी नहीं समझ सकते। वे उनकी बातें अनसुनी कर देते और अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए नारे बुलन्द करते। "मजदूरों की जय" "मजदूरों के अधिकारों की जय" "नव जाग्रति की जय" उनके नारों के नीचे वृद्ध मजदूरों का स्वर डूब जाता और पूँजीपतियों की विशाल अट्टालिकाओं की नींवें हिलने लगती। पूँजीपति भी अपने सुसज्जित कमरों में बैठे उनके नारों को सुनते और उनके मन में एक विचित्र सा भय छा जाता।

ज्यों-ज्यों वार्ता का दिन पास आने लगा त्यों-त्यों मजदूरों का कौतूहल बढ़ने लगा। सारी मजदूर बस्तियों में चर्चा का यही विषय बन गया। वे आशा निराशा की लहरों में डूबते-उतराते इसी दिन के आने की राह देखने लगे। रोज नई-नई अफवाहें उड़तीं, जिन्हें वे बड़ी दिलचस्पी से सुनते और उसी के आधार पर अपने सुख-दुख की कल्पना करने लगते। वृद्ध मजदूरों को इस बात से अधिक दिलचस्पी नहीं थी किन्तु उनके मन के भीतर छिपे-छिपे आशा का एक अंकुर फूट रहा था। वे सोचते हैं कि हो सकता है ––

द्रोह देखे हैं, किन्तु उसे कभी सफल होते नहीं देखा । हमने तो उसे सदा
ी प्रतारणा में चिल्ला-चिल्ला कर मरते हुये देखा है । मजदूर मनुष्य नहीं
है, वह पत्थर है । वह मशीन है, जिसे ये मुट्ठी भर पूँजीपति अपने इशारों
पर नचाया करते हैं क्योंकि मजदूर नाचता है, क्योंकि वह विरोध नहीं
कर सकता ।"

युवक इससे निरुत्साह नहीं होते, उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने
लगती हैं, उनके स्वर से हुंकार उठती । वे कहते, "अब समय बदल गया
है । विश्व स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है । मानव की हथकड़ियाँ टूट
रही हैं । जीवन मुक्ति के लिए तड़प रहा है । अब ये मुट्ठी भर पूँजीपति
अपने स्वर्ण के सुनहरे जाल में निरीह मजदूरों को अधिक दिनों तक नहीं
जकड़ सकते । अब मनुष्य-मनुष्य पर शासन नहीं कर सकता । आज हम
दिखा देना चाहते हैं कि हम पशु नहीं हैं, हम भी मनुष्य हैं, अब हम उन
जुआ अपने कन्धों पर अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकते । देश
उत्पादन हम करते हैं, इसलिये मिलों पर हमारा अधिकार है । हम पूँ
पतियों को उनका हिस्सा दे सकते हैं, वे केवल थोड़े से धन के बदले
इस प्रकार हमारा शोषण नहीं कर सकते । आज दुनियाँ तरक्की कर रह
इंसान आगे बढ़ रहा है । फिर हम ही क्यों पीछे रह कर बर्बरता क
में पिसते रहें । अब समय आ गया है जब हमें आगे बढ़ कर
ज्वाला जगानी होगी । केवल तभी हमारा कल्याण हो सकेगा ।

किन्तु वृद्धों के दुखों पर तब भी मलिनता नाचती रहती ।
इन लम्बे-चौड़े भाषणों का उन पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता
अनर्गल बातें कह कर हँस देते । उनका हृदय बुझ चुका है
निरन्तर निराशा और अभाव सहते-सहते वे शिथिल पड़
किसी नवीनता की वे कल्पना भी नहीं कर सकते । उन्होंने
दीर्घकाल में सहस्रों बार आशा की किरणें उगती और अस्त

वे अपने अनुभवों के बल पर चिल्ला-चिल्ला कर कहना चाहते हैं कि ये सब झूठ है, मिथ्या है, इन आशाओं का कोई महत्व ही नहीं। वे कहते, "हमारे जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आए हैं जब भयंकर आँधियाँ उठी हैं। बवंडर उठे हैं, किन्तु इन पूँजीपतियों का वे कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। हमने मज-दूरों की विश्व को दहला देने वाली हुंकार सुनी है, किन्तु वे सभी तूफान की भाँति शान्त हो गई। हम लोगों का वे कुछ भी भला नहीं कर सकीं, और ये मुट्ठी भर पूँजीपति चट्टान की भाँति गर्व से सर ऊँचा किये खड़े रहे। आज भी परिस्थिति बदली नहीं है। हम लोगों की भावनाएँ जरूर बदल गई हैं। लेकिन हममें शक्ति कहाँ है। लड़ने का साहस कहाँ है? हम तो दुर्बल हैं और सदा दुर्बल ही बना रहना चाहते हैं। वृद्धों के झुर्री पड़े मुख पर एक विचित्र सी कठोरता आ जाती। उनकी आँखों में सूनापन छा जाता और वे एक दम मौन हो जाते।

युवक उनके इन शब्दों के पीछे छिपे भारी व्यंग को भी नहीं समझ सकते। वे उनकी बातें अनसुनी कर देते और अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए नारे बुलन्द करते। "मजदूरों की जय" "मजदूरों के अधिकारों की जय" "नव जाग्रति की जय" उनके नारों के नीचे वृद्ध मजदूरों का स्वर डूब जाता और पूँजीपतियों की विशाल अट्टालिकाओं की नींवें हिलने लगतीं। पूँजीपति भी अपने सुसज्जित कमरों में बैठे उनके नारों को सुनते और उनके मन में एक विचित्र सा भय छा जाता।

ज्यों-ज्यों वार्ता का दिन पास आने लगा त्यों-त्यों मजदूरों का औत्सुक्य बढ़ने लगा। सारी मजदूर बस्तियों में चर्चा का यही विषय बन गया। वे आशा निराशा की लहरों में डूबते-उतराते इसी दिन के आने की राह देखने लगे। रोज नई-नई अफवाहें उड़तीं, जिन्हें वे बड़ी दिलचस्पी से सुनते और उसी के आधार पर अपने सुख-दुख की कल्पना करने लगते। वृद्ध मजदूरों को इस बात से अधिक दिलचस्पी नहीं थी किन्तु उनके मन के भीतर छिपे-छिपे आशा का एक अंकुर फूट रहा था। वे सोचते हैं कि हो सकता है समय

दल गया हो, हो सकता है कि अब नई क्रान्ति और नया
और वे अपने को उसी जमाने के अनुकूल बनाने का प्रयत्न
।

तियों तथा मिल मालिकों में भी भाग-दौड़ मची हुई थी। वे आज
ठन बनाने में लगे हुए थे। परस्पर विरोधी भावनाएँ रखने वाले
ा ही एक दूसरे का विरोध करने वाले पूँजीपति भी अब एक हो गये
किसी भी भाँति मजदूरों को उनका हिस्सा देना नहीं चाहते। वे चाहते
एक बार आधा पेट खाना खाकर ही मजदूरों को सन्तुष्ट हो जाना
ए।

आज उनके सामने केवल यही प्रश्न है कि उन्हें किस तरह दबाया जाय,
हें उनके अधिकारों से किस तरह वंचित रखा जाय। इसी प्रश्न को लेकर
एक हो गये। आज उनमें कहीं भी दुराव नहीं, कोई भी मतभेद नहीं।
मजदूरों में फूट डलवाने के लिए वे भाँति-भाँति के हथकण्डों का प्रयोग करने
लगे।

अन्त में वार्ता का दिन आ पहुँचा। जिस स्थान पर वार्ता होनी थी, वहाँ
बड़े प्रातः से ही मजदूर इकट्ठे होने लगे। आज उनकी उत्सुकता और
उत्साह की सीमा नहीं। वे बड़े-बड़े दल बनाकर जोर-जोर से नारे लगाने
लगे।

तभी पुलिस ने आकर उस भवन को घेर लिया, जहाँ बातचीत होने
वाली थी। एक पुलिस अधिकारी ने चिल्ला कर कहा, "यदि तुम लोगों ने
इस प्रकार दंगा करने की कोशिश की तो बातचीत तोड़ दी जायगी। हम
किसी भी मूल्य पर अराजकता सहन नहीं कर सकते।"

मजदूर चुप हो गए किन्तु फिर भी भीतर-भीतर चर्चा होती रही।

नियत समय पर मजदूरों के प्रतिनिधि जीवन के नेतृत्व में मिल मा
से बातचीत करने पहुँच गए। आज मिल मालिकों की आँखों में एक

करके अपनी तिजोरियाँ भरा करते हैं। खैर आज उन बातों को नहीं कहूँगा। आज केवल इतना पूछता हूँ कि जिन मजदूरों के बल पर आप एक दिन में हजारों लाखों रुपया कमा लेते हैं, क्या उन मजदूरों को आप जीवन की सुविधा नहीं देना चाहते। ये मजदूर हैं जिनके कन्धों पर देश के उत्पादन बढ़ाने का भार है, और जिनके सहारे आप आराम से बैठकर करोड़ों रुपया कमाया करते हैं। वे वैभव का जीवन बिताना नहीं चाहते। केवल मनुष्य की तरह रहना चाहते हैं। और वे आप से केवल अधिकार माँगते हैं।

पूँजीपतियों ने एक दूसरे की ओर देखा। उनकी आँखों में कुटिलता नाच रही थी। शिवदत्त ने जीवन के मुख पर आंखें गड़ाकर कहा, "जिस ढंग से यह बात कही गई है वास्तव में स्थिति वैसी नहीं है। तुम समझते हो कि हम इन उद्योगों से रुपया कमा-कमाकर अपनी तिजोरियाँ भर रहे हैं। मैं बता देना चाहता हूँ कि यह तुम्हारी भूल है। उद्योगों में आजकल लाभ का नाम भी नहीं है। सभी व्यापार घाटे में चल रहे हैं। अगर किसी उद्योग में कुछ लाभ भी है तो वह उसको चलाने में पड़ने वाली कठिनाइयों को देखते हुये कुछ भी नहीं है। तुम यह बात नहीं जान सकते कि हम यह पैसा आराम से घर बैठकर नहीं कमाते, वरन् सुबह से शाम तक मेहनत करके कमाते हैं।"

जीवन ने कहा, "आपकी यह बात ठीक हो सकती है। किन्तु जितना आप लाभ कमाते हैं क्या वास्तव में उतनी ही मेहनत करते हैं। आपकी आय को देखते हुए तो अपकी मेहनत कुछ भी नहीं।"

"तुम्हारी बात कुछ अंश तक ठीक है," शिवदत्त ने स्वीकार किया, "हम सब भी यही चाहते हैं कि हमारे मजदूर फूलें फलें, उनकी दशा सुधरे। उन्हें मकान, कपड़ा और अच्छा भोजन मिले। उनके बच्चों को शिक्षा मिले। हम सब हरदम उसी का प्रयत्न करते रहते हैं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ

कहा, तो तुम हड़ताल करोगे, यही तो कहना चाहते हो न ।"

"हाँ, यदि हड़ताल के अतिरिक्त कुछ और भी करना पड़ा तो हम भी पीछे नहीं हटेंगे । अपने अधिकारों के लिए आज प्रत्येक मजदूर अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार हैं ।"

"तो क्या तुम हिंसा पर भी उतर आना चाहते हो ।" शिवदत्त ने कुटिलता से पूछा ।

जीवन ने कहा, "यह मैं नहीं जाता, लेकिन सब लोग मिल कर जो निर्णय करेंगे उसे अवश्य ही कार्यान्वित किया जायगा ।

"और अगर हम मिलें ही बन्द कर दें तो ?"

आप लोग ऐसा कभी नहीं कर सकते, जीवन ने दृढ़ता से कहा, इन्हीं मिलों के बल पर तो आप जीवित हैं, इन्हीं के बल पर तो आप हम लोगों का शोषण कर रहे हैं । हम जानते हैं कि अपनी सोने की चिड़िया को कोई आसानी से नहीं उड़ा सकता ।"

"यह तुम लोगों की भूल है, "शिवदत्त ने कहा, "और इसी भूल के कारण आज तुम हड़ताल करने पर उतारू हो गए हो । कुछ स्वार्थी लोगों ने तुम्हें भड़का दिया है और तुम उन्हीं लोगों की बातों में आकर अपना अहित कर रहे हो । आज देश भर में कितनी बेकारी फैली हुई है । हम तुमसे आधे वेतन पर हजारों लाखों मजदूरों को भर्ती कर सकते हैं । यदि आज तुमने हड़ताल की तो कल ही तुमसे योग्य और स्वस्थ्य मजदूर हमारे कारखानों में तैयार हो जायेंगे । क्या तुमने कभी सोचा है कि उस समय तुम क्या करोगे ।"

"आप हमारी शक्ति का गलत अनुमान लगा रहे हैं," जीवन ने कहा, "दूसरे मजदूर कभी भी हमारा स्थान नहीं ले सकते । वे भूखे मर जायेंगे लेकिन हमारी जगह काम नहीं करेंगे, किन्तु यदि फिर भी कुछ

लोग काम पर आना चाहेंगे तो वे हमारी लाशों पर ही पाँव रखकर आ सकेंगे।"

लेकिन हम किसी भी समय अपनी मिलें बंद कर सकते हैं। इससे हमारा जरा भी नुकसान नहीं होगा। हमारी मिलें देश भर में हैं हमारा व्यापार विश्व भर में फैला हुआ है, अगर इस नगर में हमारी दो-चार मिलें बंद भी हो गईं तो उससे हमें क्या क्षति होगी। उसे हम आसानी से सहन कर लेंगे। लेकिन उस समय तुम लोगों का क्या होगा, शायद इस बात को तुमने कभी नहीं सोचा। तब तुम्हारे बच्चे एक-एक बूँद दूध के लिए तड़पेंगे। तुम्हारी स्त्रियाँ वस्त्र विहीन होकर अपने को झोपड़ों में छिपाने का प्रयत्न करेंगी तुम दवाइयों के अभाव में बीमार होकर मर जाओगे। क्या तुम लोगों ने उस समय का कोई प्रबंध कर लिया है। "शिवदत्त के मुख पर क्रूरता नाचने लगी। उसकी आँखों से कुटिलता की चिन्गारियाँ निकलने लगीं।

जीवन ने शान्त स्वर में उत्तर दिया, "यदि ऐसा दिन आया तो वह हमारे जीवन का सबसे महान् दिन होगा। उस दिन हमारी मुक्ति होगी। जिस जीवन का आपने चित्रण किया है, क्या आज का हमारा जीवन उससे जरा भिन्न है। क्या आज हमारे बच्चे दूध के लिए नहीं तड़पते, क्या आज हमारी स्त्रियाँ फटे चीथड़ों में लाज को लपेटे नहीं फिरतीं, क्या आज हम दवाइयों के अभाव में रोग ग्रस्त होकर नहीं मर जाते। उस दिन भी हम इसी तरह मरेंगे, लेकिन उस दिन हम अपने उद्देश्यों के लिए मरेंगे, अपने अधिकार के लिए मरेंगे। और हमारी आने वाली पीढ़ियाँ हमारे त्याग और बलिदान से शिक्षा लेकर हमारे मार्ग पर चलना सीखेंगी हम सब मिलकर उस दिन का सच्चे हृदय से स्वागत करेंगे।

शिवदत्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने कहा, "आज के युग में

वनने से काम नहीं चलता जीवन, हमें वास्तविकता को पहचानना
। आज जो तुम्हें आगे बढ़ाकर तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे सब
र कष्ट आया देखकर एक-एक कर तुम्हें छोड़ जाएँगे। तब तुम अकेले रह
ोगे। तब तुम्हारे आगे-पीछे कहीं भी मार्ग दिखाई नहीं देगा। उस
तुम हाथ मल-मलकर कहोगे, कि मेरे जीवन की वह सबसे बड़ी भूल
।"

जीवन ने शिवदत्त की ओर देखा। उसकी आँखों में एक भयंकर छल का भाव था जीवन ने दृढ़ स्वर में कहा, "आप मुझे भय दिखाकर डराना चाहते हैं, लेकिन आपकी यह मनोकामना कभी पूरी नहीं होगी। हम सब एक हैं और अन्तिम क्षण तक एक रहेंगे।" हमने दुख और अभाव सह कर विद्रोह करना सीखा है। आप लोगों का दमन चक्र आज चरम सीमा तक पहुँच गया है। और इसीलिए अब वह अवश्य टूटेगा। हमारे सारे मार्ग बन्द हो गए हैं, केवल यही विद्रोह और असहयोग का एक मार्ग खुला रह गया है। अब हम उसी मार्ग से चल कर अपने अधिकारों को प्राप्त करेंगे। हमने बहुत सहा है, लेकिन सहने की भी एक सीमा होती है।"

शिवदत्त ने अपनी अन्तिम चाल चली। उसने स्वर में सद्भावना औ
नेह भर कर कहा, मैं पूछता हूँ कि यह सब तुम क्यों कर रहे हो।
मजदूरों का नेतृत्व करके तुम्हें क्या मिलेगा ? कितने ही लोगों का उदाह
तुम्हारे सामने है। उन्होंने दूसरों के बहकावे में आकर अपने को नष्ट
डाला। उनके सामने अवसर थे, लेकिन उन्होंने उन्हें ठुकरा कर अपना
जीवन बिगाड़ लिया और आज उन्हें कोई नहीं पूछता। वे दर-दर की
माँगते फिरते हैं। कोई उन्हें सहारा भी नहीं देता, उनसे सहानुभू
शब्द भी नहीं कहता। क्या तुम भी उन्हीं की तरह अपना जीव

लेना चाहते हो ? मैं तुम्हारे एक सच्चे हितैषी और मित्र की तरह पूछता हूँ कि तुम्हें क्या दुख है, तुम अपनी कठिनाइयों को हमारे सामने रखो। आज-कल सभी अपना स्वार्थ देखते हैं, तुम्हारे लिए यह सुनहरा अवसर है। तुम्हें पग-पग पर, धन और इज्जत मिलेगी, तुम्हारे बच्चों को शिक्षा और अच्छा भोजन मिलेगा। तुम्हारी पत्नी को आराम के साधन मिलेंगे। तुम उन मजदूरों के साथ क्यों काम करते हो। तुम एक वार उन्हें छोड़ कर हमारे साथ आओ और देखो कि तुम्हारा जीवन कैसा सुखद बन जाता है। तुम जो माँगोगे हम तुम्हें वही देंगे। तुम अच्छे और समझदार आदमी हो। तुम अपनी बुराई-भलाई उन मजदूरों से ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो। हमें आशा है कि तुम इस अवसर को कभी हाथ से नहीं जाने दोगे और अपने भविष्य तथा अपने परिवार के सुख का ध्यान रखते हुए हमारी बात स्वीकार कर लोगे।"

जीवन के मन में भयंकर भावनाएँ घूमने लगीं। उसकी आंखो में एक विचित्र-सा विद्रोह झलक आया। उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। उसने वहाँ बैठे हुए पूँजीपतियों और मिल-मालिकों की ओर देखा। वे जीवन की ओर देखकर मुस्कुरा रहे थे। उनकी आंखें कह रही थी कि तुम हमारे स्वर्ण के माया-जाल से कभी बच नहीं सकते। तुम गरीब हो, पैसे-पैसे के मोहताज हो, हम तुम्हें सुनहरे सपने दिखाकर पास खींचते हैं और अपना काम निकाल कर तुम्हें दूध की मक्खी की तरह फेंक देते हैं। तुम समझते हो कि हम तुम्हारे सबसे बड़े हितैषी हैं, लेकिन हम कभी किसी के नहीं हो सकते। हम केवल धन के हैं और धन कमाना ही हमारा सबसे बड़ा धर्म है।

जीवन की मुट्ठियाँ बंध गईं। उसने दृढ़ स्वर में कहा, "आप मुझे पद और धन का लालच देकर पथ भ्रष्ट करना चाहते हैं। आप चाहते हैं कि

न जर्जर, निरीह मजदूरों की नौका बीच मजधार में ही डुबा दूँ,
न्होंने विश्वास करके मुझे पतवार सौंपी है। आप मुझे सुख के सपने
दिखा रहे हैं। आप चाहते हैं कि मैं आराम से जीवन व्यतीत करूँ। किन्तु
क्या आप यह नहीं कर सकते कि जो धन मुझ पर व्यय करें वे उन गरीब
मजदूरों में बाँट दें, उन गरीब मजदूरों में जिनके बच्चे गरीबी, निराश और
अभाव सहते-सहते छोटी सी अवस्था में ही बूढ़े हो गए हैं। जिनकी सारी
इच्छाएँ, अभिलाषाएँ समाप्त हो गई हैं। जिनके मन में एक शून्य और शान्ति
बसती है—मौत की शान्ति। केवल मेरे सुखी हो जाने से उनकी समस्या
तो हल नहीं हो जायगी। जिस उद्देश्य को लेकर हम खड़े हुए हैं वह उद्देश्य
तो पूरा नहीं हो सकेगा। आप हम लोगों में फूट डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।
आप मुझे अवसर खोकर जीवन नष्ट न करने की सलाह दे रहे हैं किन्तु एक
एक जीवन तो क्या, यदि इस मार्ग में चलते-चलते हम सब लोगों का जीव
भी नष्ट हो जाय, तब भी हम इस मार्ग से पीछे नहीं हटेंगे। मैं आप
अन्तिम बार पूछना चाहता हूँ कि आप हमारी माँगों का क्या उत्तर देते हैं

सभी मिल-मालिकों की मुद्रा बदल गई। उनके मन में छिपी कुटि
और क्रोध अब उनकी आँखों में झलक आया। वे एक साथ उठ
हुए। शिवदत्त ने कहा, "तुम्हारी इस बात का हमारे पास कोई जवा
है। तुम जा सकते हो।"

वार्ता टूट गई।

निशीथ देश भर का भ्रमण करके आज लौट आया, किन्तु जिस उद्देश्य को लेकर वह चला था उसकी पूर्ति न हुई। उसे लगा मानों उसने जहाँ से आरम्भ किया था, फिर वहीं लौट आया है। उसके मन में कहीं भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जिस शान्ति और सुख की खोज में वह भटकता फिरा है, उसकी उसे कहीं भी प्राप्ति नहीं हुई। उसका मन एक क्षण को भी शान्त नहीं हुआ।

जब तब निशीथ के मन में एक विचित्र सी शून्यता भर जाती है। उसके अन्तर में संघर्ष उठते हैं और वह सोचने लगता है कि क्या परमात्मा कहे जाने वाले उस भगवान की इस बड़ी दुनिया में कहीं सुख शान्ति हैं ही नहीं। क्या मनुष्य अधूरा जीवन लेकर ही संसार में आया है। क्या उसे कभी पूर्णता नहीं मिलती ? आज के मानव में जैसे होड़ सी लगी है। जो निर्बल है वह शक्तिशाली और जो शक्तिशाली है वह और अधिक ताकतवर बनने के लिए दौड़ लगा रहा है। वह अपने स्वार्थों में इतना लीन है कि उसे अपने समीप के लोगों की भी चिन्ता नहीं। वह अपने सुख-शान्ति को स्वार्थ के सागर से ऊपर उभरने नहीं देना चाहता। वह तो उसे उसी में डुबोकर रख लेना चाहता है।

निशीथ को अपने अन्धकारमय जीवन के किसी भी पहलू में आशा की किरण नहीं दिखाई देती। उसका मस्तिष्क एक उलझन में उलझ रहा है। एक अशान्ति, एक सूनापन है, जो उसके मन से कभी दूर नहीं होता। वह स्वयं नहीं जानता कि वह क्या चाहता है।

ईश्वर पर विश्वास नहीं । उसका मत है कि जिस प्रकार एक
जनता के दुख-दर्द का ख्याल किए बिना उसके भाग्य का निर्णय
चला जाता है ठीक उसी प्रकार ईश्वर भी मानव के प्रति उदासीन
है । जैसे एक नन्हा सा बालक सलेट पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींचता है
नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है, उसी तरह वह परमात्मा भी
त्र के भाग्य की रेखाएँ बनाता है और फिर अनजाने में ही उन्हें नियति
थों से पोंछ डालता है ।

निशीथ को ईश्वर पर श्रद्धा नहीं होती । वह उसे मानव से दूर रहने
वाला उदासीन शासक मात्र मानता है । वह सोचता है कि यदि ईश्वर न
होता तो भी प्रकृति में कोई अन्तर नहीं आता ।

उसे दुनियाँ में किसी पर विश्वास नहीं । कभी-कभी वह स्वयं अपने
पर भी विश्वास खो देता है । आज का जो निशीथ है, वह कल का
निशीथ नहीं हो सकता और कल का निशीथ कभी भी परसों का निशीथ
नहीं बन सकता । किन्तु हेम पर उसका स्नेह है । वह उस पर तनिक सी
श्रद्धा रखता है । लेकिन वह हेम के साथ बँधकर रह जाना नहीं चाहता ।
हेम के पास बैठे-बैठे उसे अनेक बार लगा है जैसे उसके जीवन की हलचल
रुक गई है । उसके मन में विचित्र सा सूनापन छा जाता है और वह प्रत
रणा से चीख उठता है । तब एक क्षण के लिए भी हेम के पास बैठ
उसके लिए दूभर हो जाता है । हेम यह सब जानती है । किन्तु फिर
वह उससे प्यार करती है । उस पर श्रद्धा रखती है । एक पल के
भी वह उसके प्रति उदासीन नहीं हो पाती ।

निशीथ नहीं जानता कि हेम की इस कृपा के लिए वह उसे
दे । उस समय वह अपने को बहुत ही तुच्छ और निर्बल अनु
लगता है । और तभी उसके मन में घोर निराशा और सू
जाता है ।

उसी सूनेपन को दूर करने के लिए वह निरन्तर दौड़ रहा है। उसने गगनचुम्बी महलों में होने वाले राग-रंग देखे हैं, उसने निर्धन की टूटी कुटिया में नन्हे बच्चों को ज्वर की प्रताड़ना से तड़पते देखा है। उसने बड़ी-बड़ी दावतों में अन्न को व्यर्थ फिकते देखा है और साथ ही एक रोटी के टुकड़े के लिए भिक्षुओं को श्वानों से युद्ध करते भी देखा है। उसने नए बालक का जन्म देखा है और देखा है कि महामारी के शिकार हजारों लोगों की [illegible] सड़क के किनारे [illegible] पड़ी हैं। उसने बड़े-बड़े विद्वान और पागल व्यक्तियों को देखा है। उसने बालकों और [illegible] का निरीक्षण किया है। वह नारी के मन की अनन्त गहराइयों तक गया है। लेकिन "केवल सुख" कहलाने वाली चीज का उसे कहीं भी अनुभव नहीं हुआ। उसने सदा ही सुख और आनन्द के पीछे व्यथा को छिपे देखा है। [illegible] विस्मय से [illegible] है कि मनुष्य पीड़ा का बोझा लेकर [illegible] है और [illegible] मर जाता है, शक्ति का [illegible] शान्ति की [illegible] ही नहीं।

ीथ आप ही आप हँसने लगा। आज उसे इस क्षण भंगुरता
पर बहुत हँसी आई। यह सब सोचने में उसे आज आन्तरिक
ा अनुभव हुआ।

तब वह अनायास ही उठकर हेमनलिनी की ओर चल पड़ा।

× × ×

हेमनलिनि पूजा गृह में बैठी आराधना कर रही थी। उसने शरीर पर
क सफेद धोती मात्र ही पहन रखी थी। धोती का आँचल कन्धे पर पड़ा
था। उसके लम्बे काले बाल श्यामल मेघों की भाँति बेसुध होकर उसकी
पीठ पर बिखर रहे थे। उसकी जुड़ी हुई गौर-वर्ण सुडौल बाहें एक साधक
की भाँति ईश्वर की अराधना में लीन थीं।

मूर्ति के सामने निश्चल दीप जल रहा था। धूप और नैवेद्य की भीनी-
भीनी सुगन्धि कमरे में भर गई थी। गुलाब के फूलों की मीठी महक एक
विचित्र-सी शान्ति का वातावरण उत्पन्न कर रही थी।

निशीथ ने देखा, हेम आराधना में लीन है। उसे अपने तन-मन की
भी सुधि नहीं। वह वहीं खड़ा अपलक उसे निहारता रह गया। आज हेम
उसे बहुत मधुर लगी। वह वहीं द्वार पर बैठ गया। पुष्पों की सुगन्धि
धीमे-धीमे उसके मन में समाने लगी। उसका मस्तिष्क जाने क्यों
कुछ भूलकर एक अनोखे से आनन्द में लीन हो गया। एक विचित्र
शान्ति, एक अजीब सा सुख धीरे-धीरे उस पर अपना अधिकार
लगा।

निशीथ के मुख से एक बार अस्फुट शब्दों में निकला, हेम
हेम ने शायद सुना नहीं। फिर निशीथ के मुख से कोई श
निकला। किसी के अदृश्य हाथों ने आकर उस पर अपना माया
दिया। वह अनायास ही अपनी सुधि खोने लगा।

हारा ऐसा रूप मैंने तो पहले कभी नहीं देखा।"

हेम जानती है कि निशीथ के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। वह क्षण भर की भावना में वह कर कुछ भी कर सकता है, कुछ भी कह सकता है। एक ही क्षण में वह क्या कर देगा, यह बात उसके अति निकट रहने वाली हेम को भी ज्ञात नहीं होती।

हेम का स्वर सुन कर निशीथ ने सर उठाया। वह शून्य नेत्रों से उसकी ओर देखता रह गया, उसके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। किसी अदृश्य हाथ ने उस पर जो मायाजाल फैला दिया था उससे अभी तक उसकी मुक्ति न हो पाई थी। उसके नयनों में एक विचित्र प्रकार की विशालता थी जिसे देख कर हेम का मन हर्ष और उत्साह से भर उठा। उसने स्वर में स्नेह भर कर कहा, अरे अब यहीं बैठे अनजान की भाँति मुझे देखते रहोगे क्या। तुम लौट आए और आने से पहले मुझे सूचना भी नहीं दी, तुमसे इस बात की शिकायत करना तो व्यर्थ ही है।

तभी हवा का एक झोंका आया और मूर्ति के सामने रखा दीपक बुझ गया। कमरे में चारों ओर अन्धेरा छा गया। निशीथ को लगा जैसे किसी ने कोड़ा मार कर उसे जगा दिया है। उसे लगा जैसे उसके जीवन का अन्धकार फिर उसके सामने उमड़ रहा है। उस दीप के निकलते हु[illegible] आशा रूपी प्रकाशपुंज की कोई भी झलक उसकी आँखों में बाकी नह[illegible] रहीं। एक क्षण पहले वह अनायास ही कैसे मायाजाल में जकड़ गया था इस बात पर उसे स्वयं ही आश्चर्य होने लगा। उसे अपने चारों ओ[illegible] अन्धकार के सिवा और कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

निशीथ के मन में जाने क्या आया कि एक बार वह जोर से ठठ[illegible] हँस पड़ा। उसने कहा, "एक दिन मनुष्य मृत्यु पर अवश्य विजय पा [illegible] हेम। और तब ईश्वर पर श्रद्धा रखने का कोई भी सूत्र इस पृथ्वी

इतना दुर्बल है, यह बात लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी समझ में नहीं आई।

निशीथ उठ खड़ा हुआ। उसने संकुचित स्वर में कहा, "इस समय मैं जा रहा हूँ हेम, यदि समय मिले तो मेरी ओर आने की कृपा करना।"

"क्या एक प्याला चाय भी नहीं पियोगे?"

किन्तु इसके पहले ही निशीथ द्वार से बाहर निकल चुका था। हेम हृदय में पीड़ा भरे उसे अपलक नेत्रों से देखती रह गई।

राकेश का जीवन निरन्तर सीमा में बँधता जा रहा है। उसकी सीमित परिधि से बाहर निकलने की जैसे उसकी रुचि ही नहीं है। उसका मन उसी सीमा के भीतर रहकर जीवन का सुख पा लेना चाहता है।

वह चाहता है कि अपने अनुसन्धान को किसी भी मूल्य पर पूरा करे। उसमें एक लगन है जिसे वह कभी भी छोड़ना नहीं चाहता। उसकी आँखों में सदैव स्वप्न नाचते रहते हैं। वह उस दिन की कल्पना किया करता है जब उसका अनुसन्धान सफल होगा। उस दिन का वह क्षण विश्व के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से लिखा जायगा।

वह कल्पना किया करता है कि उस दिन का मनुष्य क्या आज के मानव से अधिक सुखी होगा। क्या उसके सारे दुख-दर्द दूर हो जायेंगे ? इसी कल्पना में राकेश खो जाता है। वह आगे कुछ सोच ही नहीं पाता। उसकी आँखों में अनेक चित्र आते हैं और फिर एक-एक करके अदृश्य हो जाते हैं। यह कल्पना उसे बड़ी मधुर लगती है। वह चाहता है कि जीवन भर ऐसी ही कल्पनाओं में खोया रहे। किन्तु कभी-कभी उसे लगता है जैसे वह इन सीमित परिधियों से ऊब उठा है और एक क्षण को उसे इस साधना में कोई रस दिखाई नहीं देता। उस समय वह सोचने लगता है कि उसने जीवन में कुछ नहीं किया। उसका अब तक का दीर्घ जीवन मानो व्यर्थ ही चला गया।

तब उसे अपने भीतर से ही एक अरुचि उमड़ती दिखाई देती है। उसके मन पर एक सूनापन सा जमकर बैठ जाता है। उसे अपने चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई देने लगता है।

वह सोचने लगता है कि क्या विश्व की खुशियाँ और अनन्त रंगी-

नियाँ उसके लिए वर्जित हैं। जिस बोझ को ढोते-ढोते वह इतना बड़ा हुआ है क्या उसी को कन्धे पर रखे वह मर जायगा। उसने जीवन में क्या पाया। उन मुर्दों पर झुके-झुके उसे कौन सा सुख मिला है और यदि वह अपने अनुसन्धान में असफल रहा तो उसका मन काँप उठता है। उसके आगे उसे कुछ भी सोचने की इच्छा नहीं होती।

तब जीवन उसे भार मालूम होने लगता है। उसका मन कहता है कि समस्त बन्धनों को तोड़कर आकाश में बहुत ऊँचा उड़ जाय। तब उसे अपने जीवन में एक विचित्र सी शून्यता, एक अनोखे अकेलेपन का अनुभव होता है। उसे लगता है जैसे उसका दुनियाँ में अपना कहने को कोई भी नहीं है।

वह कल्पना की बात सोचता है। निरुपमा की बात सोचता है। निरुपमा के प्रति उसका आकर्षण है। वह उससे स्नेह भी करता है। उस पर उसकी अटूट भक्ति और श्रद्धा है। वह आज अपना भार पूर्णतया निरुपमा पर छोड़कर चल रहा है। और निरुपमा भी प्रयत्न करके कोई अभाव उसे खटकने नहीं देती। जैसे उसका एक मात्र उद्देश्य राकेश को सुखी रखना है।

राकेश सोचता है कि निरुपमा का यह ऋण वह जीवन में कभी भी नहीं उतार सकता है। किन्तु फिर भी कभी-कभी निरुपमा के प्रति उसकी विरक्ति होने लगती है। वह देखता है निरुपमा के मुख पर सदैव एक भयंकर गाम्भीर्य छाया रहता है। उसकी सारी चपलता, उसका सारा उन्माद जैसे समाप्त-प्रायः हो गया है। रस की गागर ढल चुकी है। वह केवल कर्तव्य को पूरा करने में ही सुख का अनुभव करती है। उसके जीवन के किसी भी कोने में जैसे आशा की कोई भी किरण बाकी नहीं बची है।

उस अति गम्भीर और उदास निरुपमा के प्रति कभी राकेश का

मन अरुचि से भर उठता है। उस समय एक क्षण के लिए राकेश के मन में निरुपमा के प्रति कोई भी आकर्षण शेष नहीं रह जाता।

वह चाहता है कि निरुपमा सुख की हँसी हँसे। उसके अंग प्रत्यंगों में फिर से यौवन का उन्माद प्रस्फुटति होने लगे। उसका जीवन एक बार फिर चपलता और शोखी से भर उठे। वह आज की निरुपमा में भी उसके बालकपन का औत्सुक्य और विस्मय देखना चाहता है। निराश निरुपमा को देखकर सुख नहीं मिलता, सन्तोष नहीं होता।

राकेश निरुपमा का एक नया रूप देखना चाहता है जिसे वह आँखों में समाकर सदा के लिए उसी की स्मृति में लीन हो जाय।

बारह बज गये। सूर्य आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ आया। भयंकर ताप से थके पक्षी तनिक देर विश्राम करने के लिए साया ढूँढ़ने लगे। थके बटोही वट-वृक्ष की छाया में पड़कर निद्रा में लीन हो गए। सड़क धीरे-धीरे सूनी होने लगी। गर्म तेज हवा जगती के शरीर को झुलस डालने के लिए होड़ लगाकर चल पड़ी। किन्तु राकेश उसी प्रकार उलझनों में उलझा विचार मग्न बैठा रहा।

तभी कल्पना ने आकर कहा, "आज भोजन नहीं करोगे डाक्टर, क्या इस प्रकार बैठे सोचते ही रहोगे।"

कल्पना का स्वर सुनकर राकेश चौंक उठा। उसने वैसे ही कह दिया, "आज भोजन करने की रुचि नहीं है कल्प।"

किन्तु कल्पना सरलता से पीछा छोड़ने वाली नहीं थी, उसने कहा, "इस तरह क्या सोच रहे हो डाक्टर, मुझे नहीं बताओगे। लेकिन आप तो सदा एक ही बात सोचते हैं। वही मुर्दों की बातें, उन्हें जिलाने की बातें। आज भी शायद वही सोच रहे होंगे।"

राकेश को कल्पना की बात बड़ी भली लगी। उसने कहा, "क्या तुम सचमुच यह समझती हो कि मेरी दुनिया में और कोई बात सोचने के लिए है ही नहीं ? क्या तुम मुझे उन मुर्दों की परिधि के बाहर कभी देख ही नहीं सकती कल्प ?"

"आपने समझने का कभी अवसर ही नहीं दिया डाक्टर। मैं तो समझती हूँ कि जो उन मुर्दों की परिधि के बाहर है वह डाक्टर ही नहीं है।"

कल्पना आज यह कैसी बातें कर रही है। राकेश ने उसकी ओर देखा। कल्पना की आँखों में चपलता नाच रही थी। उसके अंग-प्रत्यंगों से यौवन का उन्माद फूट रहा था।

राकेश के मन में तूफान चलने लगा। वह उसकी ओर देखता रह गया। एक अनोखे से आकर्षण ने उसे वशीभूत कर लिया। उसके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला।

कल्पना ने कहा, "सच कहिये डाक्टर, क्या इन बातों से ऊपर उठकर आप और कोई बात भी सोच सकते हैं। क्या जीवन के किसी दूसरे पहलू पर भी आपने कभी विचार किया है। क्या आपने कभी यह जानने का प्रयत्न किया है कि आपकी इस अन्धेरी कोठरी से बाहर जो बड़ी दुनिया है, उसमें क्या हो रहा है। क्या आपने जीवन को कभी भी जीवन के रूप में देखा है डाक्टर ?"

कल्पना आज कैसी चतुराई की बातें कर रही है। राकेश आश्चर्य चकित रह गया। वह तो सदैव से उसे एक नन्हीं सी बालिका मात्र समझता रहा है। आज प्रथम बार ही कल्पना को इस रूप में देखकर उसे बड़ा सुख मिला।

उसने कहा, "किन्तु इस साधना से मुक्त होकर तो मेरा जीवन-

"आप शादी क्यों नहीं कर लेते।" कल्पना ने अनायास ही कह दिया।

राकेश को अच्छा लगा। उसने कल्पना की ओर देखा। वह उसी ओर देखकर धीरे-धीरे मुस्कुरा रही थी। राकेश के मन में एक नए जीवन का संचार होने लगा। कल्पना में एक नए यौवन का उदय हो रहा था। राकेश अपलक नेत्रों से उसे देखता रह गया।

कल्पना अल्हड़ता से खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने पूछा, आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया।"

"तुम्हारी इस बात का मेरे पास कुछ उत्तर ही नहीं है कल्प ?"

"तो क्या आप जीवन भर शादी नहीं करेंगे ?"

"क्या मुझे बंधन में बाँधकर मेरा अनर्थ ही कर देने पर तुल गई हो कल्प ? क्या तुम समझती हो कि मैं जीवन में कभी इतना बड़ा उत्तरदायित्व निभा सकूँगा ?"

"बिना बन्धन में बँधे तो आपका जीवन स्थिर हो ही नहीं सकता डाक्टर। जीवन को एक आधार चाहिए। केवल उसी आधार के बल पर वह जिन्दगी की लम्बी राह को पार कर सकता है। उसके बिना तो वह अवश्य ही राह में थककर गिर जायगा।"

"मैंने तो इन्हीं मुर्दों को अपने जीवन का आधार मान लिया है कल्प और फिर कोई भी लड़की मुझसे शादी करना क्यों पसंद करेगी। मुझे विश्वास है कि मुझ जैसा पति पाकर कोई भी पत्नी अपने भाग्य को नहीं सराह सकती।"

"ऐसा न कहिए डाक्टर। आपको पाकर तो कोई भी नारी अपना सौभाग्य मान सकती है। बताइये क्यो अवकाश के क्षणों में आपने कभी किसी लड़की की कल्पना की है ?"

राकेश क्या उत्तर दे, उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया।

कल्पना ने फिर पूछा, "क्या सचमुच आपने कभी किसी लड़की के बारे में नहीं सोचा ?"

तब राकेश ने अनायास ही कह दिया, "कभी-कभी मैं एक ऐसी लड़की की कल्पना किया करता हूँ जो बिलकुल तुम्हारे ही समान हो। जिसमें तुम्हारे जैसी चंचलता और बचपन का कौतूहल हो। जिसमें तुम्हारे जैसा यौवन और रूप हो, बताओ क्या ऐसी लड़की मुझे कहीं मिल सकती है ?"

कल्पना हँसने लगी। उसकी सारी गम्भीरता लुप्त हो गई। उसने कहा, "कोशिश कर देखिए, शायद कहीं मिल जाय।"

तुम भी तो ऐसी ही लड़की हो कल्प। "राकेश के मुख से निकल पड़ा।

"तो फिर मुझ ही से शादी कर लीजिए। "कल्पना ठठाकर हँस पड़ी।

इस बात का कल्पना निःसंकोच होकर ऐसा उत्तर दे सकेगी, इसकी राकेश को आशा नहीं थी। वह हतप्रभ सा उसकी ओर देखने लगा।

एक क्षण पहले वाली गम्भीर कल्पना का बचपन फिर से लौट आया। वह स्वर में कौतूहल भरकर पूछने लगी, "बताइए मुझसे विवाह करियेगा ? तब मैं आपके सारे मुर्दों को काटकर फेंक दूँगी और आपको ले जाकर उसी अकेले पथपर खड़ाकर दूँगी जिससे आप हमेशा डरते रहते हैं।"

इस कल्पना के मन में क्या है। राकेश की कुछ भी समझ में नहीं आया। और चंचल कल्पना आँखें मटका कर हँसती हुई भाग गई।

लता निरन्तर विपुल के समीप खिंचती आ रही है। जाने कौन सा आकर्षण उन्हें एक दूसरे के समीप खींचे ला रहा है। जब लता विपुल के मुख से दीन-हीन गरीबों की व्यथा की बात सुनती तो उसका हृदय भयंकर प्रतारणा से भर उठता। वह एक बार अपनी पूरी शक्ति लगाकर उनका दुख-दर्द दूर करने का संकल्प करने लगती।

विपुल की बातें उसे बड़ी भली लगती हैं। वह चाहती है कि हर समय विपुल के पास बैठी उसकी बातें सुना करे। उसका 'आप' का सम्बोधन कब 'तुम' में बदल गया, इस बात को कोई भी नहीं जान पाया।

लता सदा ही लाड़ प्यार के बीच पली है। धन का अभाव उसे कभी भी नहीं रहा। सुख और ऐश्वर्य के बीच पली उस लता ने इन गरीबों के दुःख-दर्द के बारे में कभी सोचा भी नहीं। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि मनुष्य का जीवन कभी इतना अभावमय हो सकता है। अपनी कला के बीच सिमटी रहकर लता, विश्व से सदा ही दूर रही है। इसलिए जब वह उन दरिद्रों को देखती है तो उसे विश्वास नहीं होता। वह आश्चर्यचकित होकर उनकी दशा देखती रह जाती है।"

लता विपुल के साथ मजदूरों की बस्ती का निरीक्षण करती है। वह शिवदत्त की मिलों में काम करने वाले मजदूरों को भी देखती है। उनकी दयनीय दशा देखकर उसका हृदय भर आता है। उसके पति ने तो कभी उनके बारे में उससे नहीं कहा। इनकी दशा कितनी खराब है। लगभग आधे मजदूर एक वक्त खाए बिना ही रह जाते हैं। उनके बच्चे

बीमार पड़ते हैं तो विना इलाज के ही मर जाते हैं। अब उसने उन मजदूरों को बहुत पास से देखा है। उनके दुख-दर्द को सुना है। वह अपने पति की अनभिज्ञता में ही उनकी सेवा करती है। उनके बच्चों को शिक्षा देती है माताओं को रहने का ढंग सिखलाती है। उसमें उसे बहुत सुख मिलता है। उसमें उसे आन्तरिक सन्तोष का अनुभव होता है।

उन नन्हें-नन्हें बच्चों को पढ़ाते-पढ़ाते उसका मातृत्व जाग उठता है। वे बच्चे उसे बहुत अच्छे लगते हैं। वह जब तब आवेश में आकर उन्हें आलिंगन में भर लेती है। उसका अपना कोई भी बच्चा नहीं। वह इन्हीं बालकों के बीच अपने एक नन्हें से शिशु की कल्पना किया करती है। तब उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं और यह किसी बालक को हृदय से लगाकर बार-बार चूमने लगती है।

कलाकार लता को इन बालकों में ही सच्ची कला का आभास मिला है। वह प्रकृति की इन अबोध कला-कृतियों को देख-देखकर मुग्ध हुआ करती है। उसका मन एक विचित्र-सी शान्ति से भर उठता है।

वह तन-मन से इन लोगों की सेवा करना चाहती है। उसे विश्वास हो गया है कि आज देश का सारा भार इन्हीं लोगों के कन्धों पर है। आज उसे अपने पति की भी चिन्ता नहीं। यदि वे गलत मार्ग पर हैं तो वह उनका साथ नहीं देगी। वह मन ही मन उस दिन की कल्पना करने लगती है जब उसके पति सब कुछ छोड़कर उसी के मार्ग पर चलने के लिए उससे आ मिलेंगे।

विपुल पर लता की श्रद्धा है। वह उस पर भक्ति रखने लगी है। ऐसा दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति उसने दुनियाँ में पहले कभी नहीं देखा। लता को लगा जैसे विपुल निःस्वार्थ होकर सब कुछ किये जा रहा है। वह देना ही देना चाहता है लेना कुछ नहीं चाहता। उसमें जाने कौन सी शक्ति है जो उसे कभी पीछे नहीं रहने देती, सदा ही ढकेल कर आगे ले जाती है।

लता सोचा करती है कि यदि दुनियाँ में सभी ऐसे आदमी हो जायँ तो इन किसान-मजदूरों के दुःख-दर्द एक दिन भी सीना तानकर खड़े नहीं रह सकते।

और चित्रा। वह उसे विचित्र-सी नारी लगती है। सदा गम्भीर रहने वाली चित्रा जैसे अपने पथ पर चट्टान की भाँति खड़ी है। वह जिस मार्ग पर चल रही है, उस पर दृढ़ता से चलती रहना चाहती है। भावना और आवेश का उसके मन में कोई स्थान नहीं। अपने कर्तव्य को छोड़ कर वह और किसी चीज को महत्व ही नहीं देती।

चित्रा कभी भी पीछे रहना नहीं चाहती। वह कठोर से कठोर काम करने को भी हरदम तैयार रहती है। दया-ममता का उसके सामने कोई महत्व ही नहीं। वह तो नीरस और कठोर रहकर ही अपने आदर्शों का पालन करना चाहती है। कभी-कभी लगता है कि उसका जीवन में किसी से भी कोई सरोकार नहीं। वह किसी से लगाव रखना कभी स्वीकार नहीं करती। इस बड़ी दुनियाँ में जैसे वह अकेली है और अकेली रहकर ही आगे बढ़ना चाहती है।

चित्रा बचपन से विपुल के साथ रही है। किन्तु उनका क्या सम्बन्ध है, यह किसी को भी ज्ञात नहीं। विपुल की चित्रा पर बड़ी भक्ति है। उसका विश्वास है कि चित्रा कभी भी कोई ऐसा काम नहीं कर सकती जिससे इन दीन मजदूरों का जरा भी अहित हो।

लता ने अनुभव किया है कि विपुल चित्रा से स्नेह करता है। अकेले बैठे-बैठे जब तब उसके अधरों से एक दीर्घ सी स्वाँस निकल जाती है और चित्रा की मूर्ति उसकी आँखों में प्रतिबिम्बित होने लगती है, किन्तु चित्रा को जैसे उसकी चिन्ता ही नहीं। वह जानते हुए भी सदा ही उसकी उपेक्षा करती है। चित्रा विपुल के पास रहकर भी उससे बहुत दूर है।

लता को विपुल के साथ अच्छा लगता। है वह जब तब छाया की

भाँति उसके साथ लगी रहती है, आज भी वह विपुल के साथ घूमती-घूमती बहुत दूर निकल गई।

धीरे-धीरे सूर्य पश्चिमी क्षितिज के पीछे छिप गया। नियति के हाथों ने मकानों, वृक्षों और मैदानों पर अन्धेरे की काली चादर फैला दी। दिन के परिश्रम से थके पक्षी अपने घोसलों में लौटने लगे। पश्चिमी क्षितिज रक्त की भाँति लाल हो गया और उसकी परछाईं सामने वाली झील में बड़ी सुन्दर दिखाई देने लगी। उसी झील के किनारे एक हिरनी अपने नन्हें से बच्चे के साथ खिलवाड़ कर रही थी।

लता ने उसी ओर देखकर कहा, "देखिए, कैसा सुन्दर दृश्य है। क्या तनिक देर यहाँ नहीं ठहरियेगा।"

विपुल जाने क्या सोच रहा था? लता के प्रश्न से वह चौंक उठा। उसने कहा, " अभी हमें बहुत दूर जाना है लता, और समय बहुत कम है। ऐसा सौन्दर्य तो प्रकृति के कण-कण में बिखरा पड़ा है। जिस दिन हम लोग अपने काम से छुट्टी पा लेंगे उस दिन उसका जी भरकर रसास्वादन करेंगे।"

"क्या इस समय हम किसी विशेष स्थान पर जा रहे हैं?"

"हाँ लता, आज मैं तुम्हें अपना आश्रम दिखाऊँगा। तुम देखोगी कि वहाँ जाकर तुम्हें कितनी शान्ति मिलती है। तुम्हारा मन कैसे सुखद आनन्द से भर जाता है।"

"आपका कैसा आश्रम है। आपने तो कभी बताया ही नहीं।"

"वह उन लोगों का आश्रम है लता, जो जीवन से संघर्ष करते-करते थककर चूर हो गए हैं। जो अपाहिज हैं और जो अपना पेट भरने के लिए दो रोटियाँ भी नहीं कमा सकते। उनमें कुछ वृद्ध भी हैं और कुछ महिलाएँ भी। उनके जीवित रहने के सारे सहारे खत्म हो चुके हैं। इन लोगों को सहारा देना ही उस आश्रम का उद्देश्य है। वह सब एक

साथ मिलकर जो कुछ हो सकता है करते हैं और फिर उसी के सहारे अपना पेट पालते हैं।"

"वहाँ का जीवन कितना मधुर होगा।"लता के मुख से अनायास ही निकल गया।

"हाँ, एक बार वहाँ पहुँच जाने पर मुक्ति का मार्ग नहीं दीखता। मन करता है कि इन्हीं दीन-दुखियों की सेवा करते-करते जीवन समाप्त हो जाय। सचमुच उन लोगों के बीच रहने में बड़ा सुख है, लता।"

"हम लोगों को अभी कितनी दूर चलना होगा।"

"अब अधिक नहीं, थोड़ा ही मार्ग शेष रह गया है।"

फिर कुछ देर तक कोई नहीं बोला। लता आश्रम की कल्पना में खो गई। वहाँ के लोग कैसे होंगे, वे सब एक साथ मिलकर कैसे काम करते होंगे, यही सब बातें लता सोचने लगी।

थोड़ी ही देर बाद जंगलों के झुरमुट में धीमा-धीमा प्रकाश दिखाई देने लगा। वे लोग एक छोटी सी पगडंडी पर चल रहे थे। दोनों ओर घनी झाड़ियाँ थीं। चारों ओर भयंकर निस्तब्धता छाई हुई थी।

विपुल ने कहा, "हम आ गए लता। वह सामने ही हमारा आश्रम है।"

लता ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप विपुल के साथ चलती रही।

आश्रम भग्नावस्था में पड़ा था। किन्तु लगता था कि अपने यौवन काल में यह अट्टालिका कम ऐश्वर्यशाली नहीं रही होगी।

दोनों ने एक छोटे से द्वार से प्रवेश किया। आश्रम की दीवारें टूटी होने पर भी साफ थीं। कूड़े-करकट का कहीं भी नाम नहीं था।

आश्रम में लगभग दो सौ व्यक्ति थे। सभी अपने कार्य में व्यस्त थे। कोई टोकरी बुन रहा था तो कोई चटाई। कुछ लोग चर्खा कात रहे थे। कुछ मिट्टी के बर्तन बनाने में व्यस्त थे। उनके मुख पर एक विचित्र सा तेज था और एक अजीब सी शांति। लगता था कि वे अपने जीवन से

पूर्णतया सन्तुष्ट हैं। उन्हें किसी भी चीज का अभाव नहीं।

लता का मन एक बार तृप्ति से भर उठा। उन्हें देख कर लता को अनायास ही जाने कैसा आकर्षण हुआ कि वह मुग्ध होकर उन्हें देखती रह गई।

विपुल ने सब का अभिवादन किया। उसे देख कर वे सब उठ खड़े हुए। विपुल ने पूछा, तुम सब लोग अच्छे तो हो। मैं इधर कुछ दिनों से आ ही नहीं पाया। तुम लोगों को कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

एक वृद्ध ने उत्तर दिया, "इस जीवन से हम पूर्ण सन्तुष्ट हो गए हैं भैया! और फिर स्नेहमयी माँ की छत्रछाया में रह कर भी हमें क्या किसी चीज का अभाव रह सकता है। वह अन्नपूर्णा माँ हमें कभी भी कोई कष्ट नहीं होने देती।"

"अच्छा तुम लोग अपना काम करो।" विपुल ने कहा, "माँ कहाँ है।" "अपने कमरे में पूजा कर रही हैं।" उसी वृद्ध ने उत्तर दिया।

दोनों माँ के कमरे की ओर चले। वे पूजा समाप्त करके तुलसी पर दीप जला रही थी। उन्होंने शरीर पर केवल एक सफेद धोती पहन रखी थी। उनके सफेद बाल खुल कर उनकी कमर पर फैले थे। अवस्था लगभग ६० के रही होगी। किन्तु फिर भी उनके चेहरे से एक विचित्र तेज बरस रहा था। उनके सौम्य मुख पर एक अनोखी सी शान्ति विराजमान थी। उनकी आँखों में एक प्रकार का प्रकाश था जो किसी भी व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर सकता था। लता ने ऐसा दैवी रूप पहले कभी नहीं देखा था। वह अपलक उन्हें देखती रह गई।"

विपुल ने आगे बढ़ कर माँ के पाँव छू लिए। उसने कहा, "मैं इधर कई दिनों से आ नहीं सका माँ। कोई विशेष बात तो नहीं हुई।"

माँ ने अधरों पर हल्की सी मुस्कान लाकर कहा, "सभी कुछ ठीक चल रहा है, बेटा। कहने लायक कोई विशेष बात तो हुई नहीं और यह लड़की कौन है? इसे तो पहले कभी देखा नहीं। "माँ ने लता की ओर देख कर पूछा।

"।, हयलता है माँ हमारे दल में नई शामिल हुई है। तुम उनसे वातें करो, ये तुम्हें शिकायत का कोई मौका नहीं देंगी। तव तक मैं तनिक उन लोगों से मिल-जुल आऊँ।"

विपुल चला गया। लता ने सकुचाते हुए कहा, "आज आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हो गई माँ। मैंने जीवन में पहले कभी ऐसी महिला देखी ही नहीं। इतनी सौम्य, इतनी शान्त। आप को देख कर जाने क्यों ऐसा लगता है कि अपलक आप को ही देखती रहूँ।"

माँ हँसीं, उन्होंने कहा, "तुम वहुत अच्छी लड़की हो लता। तुमने हमारा आश्रम देखा।"

"मैं उन लोगों को अभी देख आई हूँ। उन्हें देख कर, उनसे मिल कर, जितनी शांति मिली है, जितना सुख मिला है, उससे मन परिपूर्ण हो गया है। सच कहती हूँ माँ, मैंने पहले कभी ऐसा नहीं देखा था।"

माँ का मातृत्व जाग उठा। वह स्नेह से लता का हाथ पकड़ कर अपने कमरे की खिड़की के समीप ले गई। दोनों वहीं खड़ी होकर दूर तक फैले हुए जंगलों की ओर देखने लगीं।

चारों ओर सन्नाटा छाया था। पूर्णिमा का चन्द्रमा आकाश में वहुत ऊँचा उठ कर मुस्कुरा रहा था। दूर वृक्ष की एक सवसे ऊँची डाल पर वैठे दो पक्षी प्रेमालिंगन कर रहे थे। चारों ओर से पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्धि आकर कमरे में भर रही थी।

लता पर नशा छाने लगा। वह मुग्ध होकर प्रकृति के उस असीम सौन्दर्य को देखती रह गई। उसके मुख से अनायास ही निकल गया। "यह सव कुछ कितना सुन्दर है माँ, यहाँ स्वर्ग की शान्ति वास करती है।"

"यही शान्ति तो इस आश्रम की महत्ता है वेटी। सुख के सभी साधनों के साथ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में रहनेवाले धनिकों को यह

सदा चुनौती देती रही है। यह इस बात की साक्षी है कि जीवन का सच्चा सुख दुनियाँ में कहीं ढूँढने से नहीं मिलता वह तो हमारे मन के भीतर ही विद्यमान है। इस आश्रम में रहनेवाले लोगों को तुमने देखा है? क्या तुम कह सकती हो कि वे सुखी नहीं हैं। उनके पास कोई साधन नहीं। वे अभाव में रह कर चल रहे हैं। किन्तु उनके मन में जो सन्तोष है, जो सुख का अथाह सागर लहरा रहा है, उसका दुनियाँ में कहीं कोई मुकाबला हो ही नहीं सकता। मनुष्य स्वार्थ और अहंकार के आवरण को हटा कर ही सच्चे सुख के दर्शन कर सकता है, बेटी।"

"मुझे भी आज यहाँ आकर उसी सुख के दर्शन हुए हैं, माँ।" जाने कौन से आकर्षण से वशीभूत होकर लता कहने लगी, "मेरे जीवन में धन और ऐश्वर्य का कभी अभाव नहीं रहा। सुख के समस्त साधनों के बीच ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में पल कर बड़ी हुई। इच्छा रहने पर किसी भी वस्तु को मैंने अपने लिए असाध्य नहीं पाया। मुझे स्नेह मिला, इज्जत मिली, जीवन में मुझे सभी कुछ मिला माँ, लेकिन मुझे ऐसे सुख का कभी भी अनुभव नहीं हुआ। ऐसी शान्ति मेरे मन पर कभी जम कर नहीं बैठी। आज के उन थोड़े से क्षणों को मैं जीवन में कभी भी नहीं भुला सकती। आपके इस स्नेह और कृतज्ञता से मेरा मन जिन्दगी भर कभी भी उऋण नहीं हो सकता।"

"इन लोगों की सेवा करने में जो आनन्द मिलता है बेटी, उसकी दुनियाँ में कोई तुलना हो नहीं, तुम यहाँ कुछ दिन रहकर देखो फिर तुम्हारा मन यहाँ से जाने को कभी नहीं करेगा।"

"क्या तुम अकेली रह कर ही इतने बड़े आश्रम का प्रबन्ध कर लेती हो माँ।" लता ने उत्सुकता से पूछा।

"ये लोग बड़े सरल हैं बेटी, ये किसी भी अभाव को अभाव ही नहीं समझते। इनकी सेवा करते-करते मुझे कभी भी थकान का अनुभव नहीं

हुआ। जाने कौन सी शक्ति मेरे शरीर को दिन-रात चलाया करती है। यह बात मैं कभी भी जान नहीं पाती। अब तो मुझे विश्वास हो गया है बेटी कि इस जीवन से परे दुनियाँ में कुछ है ही नहीं।

लता माँ के चरणों में बैठ गई। उसने अस्थिर स्वर में कहा, "तुम्हारी ये बातें सदा मेरा पथ आलोकित करती रहेंगी माँ। मैं जीवन में सदा ही तुम्हें आदर्श मानकर तुम जैसा बनने का प्रयत्न करती रहूँगी। आज जो तुमने मुझे दिया है उसे अपने जीवन की सबसे बहुमूल्य निधि की भाँति अपने हृदय में सँजोकर रखूँगी। मुझे आशीर्वाद दो माँ कि मैं अपने उद्देश्य में सफल हो सकूँ।"

लता ने माँ के चरण पकड़ लिए और उन पर अपना सिर रख दिया। तभी विपुल लौट आया। उसने कहा, "बहुत देर हो गई लता, अब घर लौट चलना चाहिए।"

लता को विपुल की यह बात कुछ अच्छी नहीं लगी उसने कहा, "बहुत रात हो गई है विपुल बाबू! न हो आज यहीं रह जायँ।"

विपुल हँसा, "इन घने जंगलों में भी डर का कोई कारण नहीं है लता। माँ के प्रताप से हमारे मार्ग में कोई भी बाधा खड़ी नहीं रह सकती।"

"जो माँ इतनी पराक्रमी हैं, आज उन्हीं के चरणों में रहने को मन कर रहा है विपुल बाबू।"

"अच्छा तो फिर यहीं रहो।" विपुल ने कहा, "आखिर यहाँ के इन सब लोगों की भाँति तुम्हारा मन भी मेरी इन स्नेहमयी माँ ने हर ही लिया।"

इस बात के उत्तर में लता केवल मुस्कुरा कर रह गई।

१७

ऊपर के कमरे में केवल एक ही पलँग है। जब विपुल यहाँ होता है तो वह उसी कमरे में सोता है। उसी पलँग के पास फर्श पर एक छोटी सी चटाई बिछी है। उसके अतिरिक्त कमरे में और कुछ भी नहीं है।

जब बहुत रात गए दोनों माँ के पास से उठकर कमरे में आये तो विपुल ने कहा, "मुझे पत्थरों पर पड़कर सो रहने की आदत है लता, तुम उस पलँग पर विश्राम करो। तुम तो जीवन में शायद कभी भी जमीन पर सोई नहीं होगी।"

"क्या आप इसी तरह मेरा अपमान करने के लिए मुझे यहाँ ले आए हैं। लता ने कहा, "बताइए तो, कौन से अधिकार के बल पर मैं आप को जमीन पर फेंककर आप की पलँग पर कब्जा कर सकूँगी।"

विपुल हँस पड़ा, "इस दुनियाँ में तो सभी एक दूसरे का हक छीनते हैं लता, यदि कुछ देर के लिए तुम भी ऐसा कर लोगी तो कौन सा बड़ा अपराध कर बैठोगी।"

लता भी हँस पड़ी। उसने विपुल की बात अनसुनी करके उसे पलँग पर लिटा दिया और फिर स्वयं जमीन पर बिछी चटाई पर लेट गई। लता पुलकित मन से सोचने लगी, सिर्फ मेरे ही अनुरोध से आज इनका जाना स्थगित हो गया है। नहीं तो विश्राम क्या वज्रपात होने की दुहाई देकर भी उनके संकल्प में बाधा नहीं पहुँचाई जा सकती।

कुछ देर बाद लता ने पूछा, "आज नींद नहीं आ रही है क्या ?"

विपुल आँख मींचे बिस्तर पर पड़ा था। उसने वैसे ही उत्तर दिया, "मैं सोच रहा हूँ लता कि यदि तुम सब लोग मिल कर मेरी इस तरह लापरवाही करते रहोगे तो मेरे आत्म-सम्मान को चोट पहुँचेगी।"

लता हँस दी। उसने कहा, "हम सब लोगों ने तुम्हें आदमी के दर्जे से निकाल कर पत्थर का देवता जो बना रखा है भैया। तुमसे कभी किसी को तनिक दुख नहीं हो सकता। तुम्हारे हाथों से कभी किसी का लेशमात्र भी अकल्याण नहीं हो सकता।"

"भैया" का सम्बोधन सुन कर विपुल को बड़ा भला लगा। उसने ऐसा शब्द पहले कभी नहीं सुना था। उसने गद्-गद् स्वर से कहा, "मेरे लिए मन में इतना आदर कभी मत रखना लता। नहीं तो अपनी कल्पना पर तुम्हें किसी दिन जरूर पछताना पड़ेगा।"

सहसा लता ने पूछा, "अच्छा भैया, लोग जो कहा करते हैं कि आप में और देश के उन गरीब किसान मजदूरों में कोई अन्तर नहीं। दोनों बिल्कुल एक ही हैं–सो यह कैसे?"

विपुल ने आँखें मीचे-मीचे ही कहना आरम्भ किया, "बचपन का वह जमाना भी बड़ा विचित्र था लता। इस जीवन में जाने कितना आया और कितना गया, लेकिन वह दिन आज तक भी अक्षय बना हुआ है। उस दिन की स्मृति आज भी धमनियों में रक्त का संचार कर देती है। उस दिन जीवन को इतने नग्न रूप में देखा तो मैं प्रताड़ना से काँप उठा। उस दिन मैंने प्रथम बार जाना बहन, कि जीवन कितना संकटमय और दुरूह है। हम एक छोटे से गाँव में रहते थे। गाँव छोटा था, उसमें कुल मिला कर साठ-सत्तर परिवार रहे होंगे। वे सभी परिवार किसानों के थे और खेती करके पेट पालना ही उनका पेशा था।

एक बार भयंकर अकाल पड़ा। दूर-दूर तक पानी का नाम नहीं था। धरती सूर्य की तपन से जल उठी। नित्य ही ढेर के ढेर पशु मरने लगे। सारी फसलें नष्ट हो गईं। कहीं कुछ भी पैदा नहीं हुआ। तभी एक दिन जमींदार के सशस्त्र आदमी गाँव में आ पहुँचे और किसानों से लगान माँगने लगे। इन बेचारों के पास था ही क्या। फसल तो नष्ट हो ही चुकी थी।

उन्होंने लगान माफ कराने के लिए प्रार्थना की और सरकार के आदमियों के पावों पर गिर कर गिड़गिड़ाये । किन्तु उनकी कोई सुनवाई नहीं हुई । वो लोग उनके पशु खोलने लगे और उनके वर्तन-भाँड़े उठा कर ले जाने लगे । मेरे एक वड़े भाई थे, वड़े साहसी और परोपकारी, वे उन्हें रोकने के लिए फड़कने लगे । किन्तु यदि वे गए तो तुरन्त ही मारे जायेंगे, यही सोच कर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया । अपने को किसी भी तरह न छुड़ सकने के कारण वे वहीं निष्फल उछलने लगे और जमीदार के आदमियों को गालियाँ देने लगे । जमीदार के आदमी किसानों के सारे पशु और सामान लेकर चलते वने । किसी के पास कुछ भी नहीं रह गया । उस समय मैं वच्चा ही था लता किन्तु उन किसानों का गिड़गिड़ाना, प्रार्थना करना और मरण जैसा चीत्कार करना आज भी मेरे कानों में कभी-कभी गूँज उठता है । वह कैसा हृदय-विदारक दृश्य था, लता ।"

लता स्तब्ध होकर सुन रही थी । उसने कहा, "फिर क्या हुआ भैया ।"

विपुल ने कहा, "जमीदार के आदमियों का मुखिया जाते-जाते कह गया कि आज तो हम थक गए हैं किन्तु फिर किसी दिन मेरे भैया से अपने अपमान का वदला जरूर लेंगे । भैया मजिस्ट्रेट के सामने जाकर रोए, "एक वन्दूक चाहिए नहीं तो वे हम लोगों को मार डालेंगे । "इस पर मजिस्ट्रेट क्रुद्ध हो गया । उसने कहा, "तुम देश में वदमाशी फैलाना चाहते हो, कानून की व्यवस्था को अपने हाथ में लेना चाहते हो, तुम्हें वन्दूक हर्गिज नहीं मिल सकती । भैया ने कहा, "हम सव लोग तावह हो जाएँगें हजूर ।" " मजिस्ट्रेट हँस पड़ा उसने कहा, तुम लोग लगान नहीं दोगे तो तुम्हें इसी तरह तवाह होना पड़ेगा ।

लता क्रोधित होकर विस्तर पर वैठ गई । उसने कहा, "उसने ऐसा कहा भैया । क्या उसने सहायता देने से विल्कुल ही इन्कार कर दिया ।"

विपुल कहता गया, "उसकी वह वात आज तक भी मैं भूला नहीं हूँ

लता। भैया ने सोचा कि ये सब लोग एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। उनसे सहायता की माँग करना भी भूल है। तब उन्होंने अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयत्न किया। उन्होंने चाकू और बरछे बनाने शुरू कर दिए। लेकिन एक दिन पुलिस आई और उन सब को छीन कर ले गई। गाँव की रक्षा का अन्तिम सहारा भी खत्म हो गया।"

"फिर क्या हुआ?" लता ने उत्सुकता से पूछा।

"फिर वही हुआ जिसकी सम्भावना थी। एक दिन रात के समय जमीदार के आदमियों के गिरोह ने गाँव पर हमला किया। उन्होंने गाँव की टूटी-फूटी झोपड़ियों में आग लगा दी। सब लोग भागने लगे। लेकिन उन हृदयहीन आदमियों ने भैया को पकड़ लिया और उन्हें निर्दयता के साथ जिन्दा ही आग में जला दिया। ओह, उस दिन की वह वीभत्स बात भुलाए नहीं भूलती।"

लता का चेहरा फक पड़ गया। उसने अवरुद्ध कंठ से कहा, "उन लोगों ने उन्हें जिन्दा जला दिया।"

विपुल ने कहा, भैया बड़े बहादुर थे लता। वे जो बातें किया करते थे वे आज भी मुझे ज्यों की त्यों याद हैं। वे कहा करते थे कि तू लड़कियों की भाँति दुनियाँ की भेड़-बकरियों के सुर में सुर मिला कर कभी मत रोना। किन्तु अपने सुख के लिए जिन मुट्ठी भर लोगों ने देश में मनुष्य कहलाने लायक कोई प्राणी बाकी नहीं छोड़ा, उन्हें तू जिन्दगी में कभी माफ मत करना। जिस दिन वह विशाल हृदय हमें छोड़कर सदा के लिए चला गया, उसी दिन उनके शरीर की राख मैंने अपने माथे पर लगाकर प्रतिज्ञा की लता कि जब तक इन गरीब किसान-मजदूरों को उनके दुख से मुक्ति नहीं दिला लूँगा, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा। उसी दिन से मैं संघर्ष कर रहा हूँ बहन! और जब तक मेरी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होगी मैं निरन्तर संघर्ष करता रहूँगा।"

लता चुपचाप बैठी थी ! यह एक छोटी सी साधारण कहानी ही तो है। किसी एक छोटे से गाँव में एक आदमी के जबरन प्राण ले लिए गए, बस यही तो संसार में होने वाली अनेकों दुख की भयंकर घटनाओं के सामने वह है क्या चीज। इस अभागे देश में रोज ही न जाने कितने लोग इस प्रकार के चोर-डाकुओं के हाथों से मरते हैं। उनकी कोई गिनती ही नहीं। फिर भी वह छोटी सी घटना इस पाषाण पर जाने कितनी गहरी लकीर कर गई। लता ने एक बार कनखियों से विपुल की ओर देखा। उसे लगा जैसे उस अपमान की ग्लानि ने मानों उस पाषाण के चेहरे पर गहरी स्याही पोत दी है।

वेदना के मारे उसके हृदय में उथल-पुथल मच गई। उसने कहा, "भैया।"

लता के स्वर में भारी व्यथा भरी हुई थी ! जिसे सुनते ही विपुल आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा। उसने पूछा, "क्या रो रही हो लता?"

"नहीं भैया ! मैं पूछती हूँ कि क्या उन लगों से कभी भी तुम्हारी संधि नहीं हो सकती। क्या उनका मन-परिवर्तन होने पर भी तुम उन्हें अपना कहकर अपना नहीं सकते।

"नहीं लता, ये समाज के सबसे बड़े शत्रु हैं। इनका मन कभी नहीं बदल सकता। और हमारा इतिहास आँसुओं से नहीं रक्त से लिखा जायगा बहन !"

लता डर गई। उसने आतंकित स्वर में कहा, "तुम कभी भी किसी का अकल्याण चाह सकते हो भैया, इसकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकती।"

विपुल हँस पड़ा। उस निविड़ अन्धकार में भी वह कुछ देर तक लता की ओर देखता रहा। कुछ देर बाद उसने कहा, "तुम बड़ी सरल हो बहन, इसीलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम सदा सुखी रहो।"

लकुछ देर वाद विपुल ने फिर कहा, "आज एक वात पूछता हूँ ता, सच-सच वताओगी ?"

"क्या ?"

"तुम तो वड़ी कलाकार हो लता, तुम्हारा जीवन तो सदा से ही कला का जीवन है। मैं पूछता हूँ कि क्या किसी दिन भी उन दीन-हीन मजदूरों के जीवन में तुम्हें कला का आभास नहीं मिला ?"

लता ने कहा, कैसी वातें करते हो भैया। मुझे तुम्हारे इन किसान मजदूरों के वीच आए हुए अधिक दिन तो नहीं हुए और मैं उन्हें अभी ठीक से समझ भी नहीं सकी। किन्तु मुझे लगता है कि उनकी सेवा करना ही जीवन की सच्ची कला है। उनकी सेवा करते-करते कभी-कभी मेरा मन ऐसी शान्ति से परिपूर्ण हो उठता है कि मुझे किसी वात की सुधि ही नहीं रहती।"

विपुल ने तनिक सा हँस दिया, उसने कहा, "क्या अपने भैया का मन रखने के लिए ही यह सव कह रही हो ? सच मानना वहन, तुम्हारा यह विपुल इससे विल्कुल उल्टी वात सुनकर भी तुमसे नाराज नहीं होगा।"

लता ने स्वर में स्नेह भरकर कहा, "तुम्हारी यह महानता तो दल के किसी भी आदमी से छिपी नहीं है भैया, फिर अपने ही मुँह से उसे वार-वार दुहराकर क्यों छोटे वन रहे हो।"

"तुम्हारी यह कैसी नीति है लता, तुम अपने भैया को छोटा या वड़ा कुछ भी वनने देना नहीं चाहती।"

"मैं तो यही जानती हूँ कि तुम सभी कुछ हो। जो तुम नहीं हो, वह दुनियाँ में कुछ भी नहीं है। तुम्हारे महत्व में तो दुनियाँ के सारे नाते-रिश्ते समा गए हैं भैया।"

विपुल ने कुछ गम्भीर वनकर कहा, "देखता हूँ तुम्हारा अन्ध-विश्वास दिन-दिन वढ़ता ही जा रहा है लता !"

लता ने धीमे स्वर में कहा, क्या सो गये भैया।

विपुल हँस पड़ा। एक क्षण में उसने अपने को पूर्णतया बदल डाला। उसने कहा, "तुम जो अपने पति से इस प्रकार संघर्ष करने पर तुल गई हो लता! तो क्या तुम्हें उनसे तनिक भी प्रेम नहीं है?"

लता उसका क्या उत्तर दे। उस अन्धेरे कमरे में एक पुरुष उससे उसके पति के प्रेम की बात पूछ रहा है। इसका वह क्या कह कर जवाब दे। उसका मन संकोच से भर उठा।

विपुल ने फिर कहा, "मैं किसी से कहूँगा नहीं बहन!"

लता का चेहरा शर्म से लाल हो गया किन्तु विपुल आँखें मींचे हुये था। इसी से उसकी शर्म परछाई में नहीं आई। वह विपुल की मिची हुई आँखों की ओर देखती हुई बोली, "क्या आप समझते हैं भैया कि भारतीय नारी का पति के बिना कोई अस्तित्व ही नहीं। क्या वह पति के बिछोह में बिस्तर पर पड़ी तड़पते रहने के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकती? क्या आप हमारे सारे समाज को इतनी बड़ी सजा दे देना चाहते है?"

"लोग कहा करते हैं, मैंने इसीलिये पूछा।"

"अपने अनुभव से कुछ नहीं जानते।"

"अरी बहन, कुछ सोच क्योंकि इन बातों का अनुभव मुझे कब और कैसे हो सकता था?" सच कहते हो भैया, इन सब बातों का अनुभव तो तुम्हें कभी हुआ नहीं। तुम्हारे पत्थर से हृदय पर केवल एक ही चीज खुदी है, "ये किसान मजदूर" जिसका न कोई आदि न अन्त, जिसकी शक्ल हम लोगों को दिखाई नहीं देती, इसी से हम सब आपके पास-पास रह सकती हैं, "नहीं तो......।" कहते-कहते वह अकस्मात् रुक गई।

विपुल ने मुस्कुराते हुए कहा, "सब लोग क्या मुझी से प्रेम करते हैं लता! मुझे तो सभी पत्थर समझ कर दूर फेंक देते हैं। लेकिन अब

तो नींद के मारे आँखें मिची जा रही हैं मैं सोऊँ, तुम चाहो तो पति का चिन्तन कर सकती हो।"

"लेकिन यह बात आप किसी से कह नहीं सकते।"

"नहीं मैं किसी से नहीं कहूँगा। लेकिन मुझसे शर्म करने की शायद तुम जरूरत नहीं समझती।"

लता ने हँसकर कहा, "नहीं भैया, तुम तो पत्थर हो, आदमी को ही आदमी से शर्म मालूम होती है।"

इसके उत्तर में विपुल केवल मुस्कुरा कर रह गया। नीचे की घड़ी में टनन्टन करके चार बज गए। सामने के जंगल में पिछली रात का अन्धकार गाढ़ा हो गया। उसकी तरफ निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई लता स्थिर बैठी न जाने क्या सोचने लगी और विपुल क्षण भर में ही निद्रा मेंलीन हो गया।

उस दिन आराधना करती हुई हेम को देखकर निशीथ के मन में जो एक अनूठी सी शान्ति घर कर गई थी उसकी छाप अब भी ज्यों की त्यों मौजूद है। वह थोड़े से क्षण उसके जीवन में मानो अक्षय बनकर रह गए हैं। उस दिन उसने जो पाया, वैसा उसे जीवन में कभी नहीं मिला था। उस दिन की इतनी बड़ी आश्चर्यजनक बात से उसका मन तृप्त हो गया।

उसने जीवन को एक नए रूप में देखा। उसके भीतर पैठकर जाने कौन उसका हृदय गुदगुदाने लगा। एक पुलक से उसका अंग-अंग रोमांचित हो उठा। एक बार उसे लगा कि हेम के समीप रहने में ही उसके जीवन का सच्चा सुख है। जिस सुख और शान्ति की वह खोज कर रहा है वह हेम से विलग रहकर कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

हेम निशीथ से प्रेम करती है। वह उसे सुधारने का निरन्तर प्रयत्न करती रही है। जब-जब निशीथ गिरा है, इसी हेम के हाथों ने उसे पकड़ कर ऊपर उठाया है। माँ की भाँति पग-पग पर उसकी रक्षा की है।

निशीथ हेम को जब तब कटु शब्द कहता रहा है। वह उसकी उपेक्षा भी करता रहा है। किन्तु हेम ने कभी बुरा नहीं माना। उसने कभी उसकी उपेक्षा नहीं की। निशीथ सोचा करता है कि उसके बदले में वह हेम को क्या दे। वह अपना सब कुछ देकर भी उसका ऋण उतारना चाहता है।

इन दिनों निशीथ बड़ा अनमनस्क रहा है। अनेक विचार उसके मस्तिष्क में आ-आकर अदृश्य हो जाते हैं। अनेक बातें वह सोचता है और फिर उन्हें विसरा देता है। इन दिनों उसे अनुभव हुआ कि वह हेम

के विना नहीं रह सकता। उससे दूर रह कर उसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। उसे लगता है जैसे उसका और हेम का अस्तित्व भिन्न नहीं है। वे युगों से एक होकर चल रहे हैं और सदा ही एक होकर चलते रहेंगे।

निशीथ सोचता है कि उनमें कहीं भी कोई दुराव नहीं। उनके संस्कारों में कहीं भी कोई भिन्नता नहीं। उनके विचारों में तनिक सा भी अन्तर नहीं वे तो अपने बीच एक कृत्रिम दीवार बनाकर दूर-दूर खड़े हुए हैं। लेकिन अब उस दीवार को निशीथ सहन नहीं कर सकेगा। वह एक वार पूरी शक्ति लगाकर उसे तोड़ डालेगा, अवश्य तोड़ डालेगा।

यही सब सोचता हुआ निशीथ हेम के घर जा पहुँचा। हेम ने उसे देखते ही कहा, "बताओ तो निशीथ, यह रूठने मनाने का क्रम क्या जिन्दगी भर चलता रहेगा। तुम इतने दिनों बाद आए और उस दिन भी झगड़ा करके चले गए। क्या अपनी यह आदत तुम एक पल को भी छोड़ नहीं सकते।"

निशीथ का स्वर अस्थिर हो उठा। उसने कहा, "आज मैं अपने मन की उपेक्षा, उसके दुराव को जीवन भर के लिए समाप्त करने आया हूँ हेम। हम लोगों के बीच में एक कृत्रिम दीवार सर उठाए खड़ी है, आज मैं उसे सदा के लिए ध्वंस कर देना चाहता हूँ। मैंने जीवन में बहुत सहा है, अब इस जीवन को अधिक देर तक सहने की शक्ति मुझमें नहीं है।"

हेम समझ न सकी। उसने कहा, "आज यह कौन सी नई बात लेकर झगड़ा करने आए हो निशीथ! क्या तुम कभी भी मेरा उपहास करना नहीं छोड़ोगे?"

निशीथ ने कहा, "नहीं हेम, मैंने जीवन में जिस दिन से तुम्हें जाना उसी दिन से मन ही मन तुमसे स्नेह करने लगा। सच कहता हूँ, जीवन के सुख-दुख में तुम्हें एक क्षण को भी नहीं भूला। जब भी मैं गिरा हूँ,

जब भी दुर्बलता ने मुझे घेरा है, तभी प्रकाश पुँज बनकर मेरा पथ-प्रदर्शन किया है। तुमने मेरे लिए जो भी किया उसका उपकार मैं किसी क्षण भी नहीं भुला सकता। इसीलिए कहता हूँ कि आओ आज हम पथ पर बहती हुई दो सरिताओं की भाँति मिलकर एक हो जायँ।"

हेम हँस पड़ी। उसने कहा, "हम अलग ही कब थे निशीथ! हम तो सदा ही एक होकर चले हैं। दुख-सुख के किसी भी क्षण में हमने एक दूसरे को छोड़ा तो नहीं, फिर बताओ आज यह कौन सी एकता की दुहाई लेकर मेरे पास आए हो?"

"मैंने अनुभव किया है हेम कि तुम्हारे स्नेहमय आँचल से दूर रहकर मैं कभी भी शान्ति नहीं पा सकता। तुम्हारे चरणों में पड़ा रहने पर ही मुझे सुख का अनुभव होता है। मैंने जीवन में बहुत देखा है, लेकिन तुम्हारे पास रह कर मुझे जो सुख मिला है वह और कहीं नहीं मिला। तुम प्रेरणा बन कर मेरे कण-कण में समा गई हो। तुमसे शक्ति पाकर ही मैं पथ पर आगे बढ़ता जा रहा हूँ। बताओ, क्या तुम मुझसे शादी नहीं कर सकती?"

हेम स्तब्ध रह गई। वह बहुत देर तक अपलक निशीथ की ओर निहारती रही। उसे कभी भी आशा नहीं थी कि निशीथ एक दम से ऐसी बात कह देगा। उसका चेहरा एक बार शर्म से लाल हो गया। उसके अन्तस्थल से अनजाने में ही एक दीर्घ उसाँस निकल गई। पता नहीं उसे निशीथ ने सुना या नहीं। वह शून्य नेत्रों से हेम की चरणों की ओर निहार रहा था।

बहुत देर बाद हेम ने कहा, "तुम्हें मुझसे विवाह करके ही कौन सा सुख मिलेगा निशीथ! जो अब है उससे भिन्न तो जीवन में कुछ हो नहीं सकता।"

निशीथ बोला, "मुझे इससे आगे किसी भी चीज की आकाँक्षा नहीं है। किन्तु कभी-कभी लगता है कि तुम मेरे पास होते हुए भी मुझसे

बहुत दूर हो। कभी-कभी अमावस्या की रात्री में अपने विस्तर पर अकेले पड़े-पड़े काले आकाश के किसी एकाकी तारे को टिमटिमाते देखता हूँ तो लगता है कि इस बड़ी दुनियाँ में, मैं भी इस तारे की भाँति अकेला रह गया हूँ। तब मन में जाने कैसी व्यथा भर जाती है। लगता है कि मेरा दुनियाँ में कोई भी नहीं है। सारे संगी-साथी मुझे पीछे छोड़ गए हैं और मैं मार्ग पर पड़े पत्थर की भाँति ठोकर खाकर दूर जा पड़ा हूँ। तब मेरे रिक्त स्थान में दुनियाँ भर का सूनापन सिमट आता है। लगता है कि मेरे चारों ओर भयंकर अन्धेरा छा गया है और काल के विकराल हाथ मुझे अपनी अन्धेरी चादर में घसीटे लिए जा रहे हैं। मुझे अपने चारों ओर कोई भी दिखाई नहीं देता। तब मेरा मन भय से काँप उठता है, जाने कैसा आतंक मेरे जीवन में बैठ कर उभरने लगता है। तब उस अन्धेरे पथ में हाथ में दीपक लिए तुम्हीं मुझे राह दिखाने आती हो और तुम्हारे ही पग चिन्हों पर चलकर मैं आगे बढ़ सकता हूँ। आज मैं उस भय को, उस आतंक को सदा के लिए दूर कर देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम जीवन में सदा ही मेरे साथ रहकर मुझे मार्ग दिखाती रहो। तुमने तो मुझे बहुत दिया है, आज इस छोटी सी प्रार्थना को भी अपना समझ कर स्वीकार कर लेना हेम!"

एक क्षण के लिए हेम को कोई उत्तर नहीं सूझा। वह स्तब्ध ही होकर उसकी ओर देखती रह गई। आज निशीथ को क्या हो गया है। उसके मन पर कैसी दुर्वलता जमकर बैठ गई है। जो निशीथ सदा से इतना कठोर और निष्ठुर रहा है, वह आज अनायास ऐसा दयार्द्र क्यों हो गया, यह बात लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी समझ में नहीं आई।

हेम ने धीरे-धीरे स्थिर भाव में कहना आरम्भ किया, "जिस दिन से तुम मेरे जीवन में आए निशीथ उसी दिन से मैंने तुमसे प्रेम किया। तुम्हारे लिए मेरे मन में कितनी श्रद्धा और भक्ति है यह शायद तुम

कभी भी नहीं जान सकते। मुझे लगता है कि तुम्हारे बिना मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं। तुमसे अलग रहकर तो मैं दुनियाँ में एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। जो तुम्हारा है उससे कुछ भी अलग मेरा नहीं है। मैंने तुम्हारे भीतर एक महान व्यक्तित्व का अनुभव किया है और उसी को मन में बसा कर मैंने अपने को चारों ओर बंद कर लिया है। मेरा सुख-दुख, इच्छा-आकांक्षा कुछ भी तुमसे भिन्न नहीं है। जो तुम हो उसके परे मैं कुछ भी नहीं हूँ। लेकिन जो निधि मैंने अपने हृदय में यत्न से बंद करके रख ली है, उसे तुम्हारे सामने खोलकर लुटने नहीं दूँगी। जिस आँचल को भिक्षा से भरकर एक बार समेट लिया है, उसे फिर किसी के भी आगे फैलाने नहीं जाऊँगी, तुम्हारे आगे भी नहीं निशीथ!"

निशीथ चुपचाप सुन रहा था। उसके मन में जाने कैसी उथल-पुथल मची हुई थी।

हेम कहती गई, "मुझे विवाह के पथ में घसीटने का प्रयत्न मत करो निशीथ! यदि जीवन में किसी दिन तुम्हारे मन पर फिर से दुर्बलता जमकर बैठी, मार्ग पर चलते-चलते यदि फिर किसी दिन तुम गिरे तो बताओ, कौन सी शक्ति के बल पर मैं तुम्हें वापस खींच लाऊँगी। तुम्हारी पत्नी बनकर तो मुझमें कुछ भी शेष नहीं रह जायगा। तब मेरी सारी शक्ति, मेरा सारा आकर्षण पल भर में ही टूट कर नष्ट हो जायगा। उस दिन तो मैं एक साधारण नारी के सिवा और कुछ भी नहीं रह जाऊँगी। मैं तुम्हें खोना नहीं चाहती। इसीलिए मैं सदा तुम्हारी प्रेयसि बनी रहना चाहती हूँ। पत्नी बनाकर मुझे अपने मार्ग से हटाने का प्रयत्न मत करो। अपने लिए नहीं तो मेरी ही खातिर मुझे क्षमा कर दो।" हेम का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह एक बारगी ही चुप हो गई।

निशीथ के समझ में कुछ भी नहीं आया। उसने अस्थिर स्वर में कहा, "तुम्हारे दर्शन को तो मैं नहीं समझूँगा हेम, लेकिन तुमने जो कहा है, उस पर अविश्वास करने की शक्ति भी नहीं है। मैं अपने से तुम्हें सदा ही महान समझ कर तुम्हारी बात मानता आया हूँ, आज भी उसे अस्वीकार नहीं करूँगा। मेरे जीवन में जो होगा मैं सह लूँगा। लेकिन तुम्हें तनिक भी कष्ट नहीं होने दूँगा। प्रतिज्ञा करो कि तुम जीवन में कभी भी मुझसे दुराव नहीं रखोगी। मैं जहाँ भी हूँ, सुख-दुख के क्षणों में मेरी याद जरूर कर लिया करोगी।"

हेम के मन में जाने क्या आया कि उसने बढ़ कर निशीथ के पाँव पकड़ लिए। उसने आँखों में आँसू भरे-भरे कहा, "इन चरणों से दूर रहने की तो मुझमें तनिक भी शक्ति नहीं है निशीथ! मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि यदि मन में कभी कोई अभाव आया तो इन्हीं चरणों का सहारा ढूँढ़ने दौड़ पड़ूँगी, इनके सिवा तो मुझे दुनियाँ में कहीं आश्रय नहीं मिल सकता।"

निशीथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह शून्य नेत्रों से खिड़की के बाहर दूर तक फैले आकाश की ओर देखता रहा।

कुछ देर बाद निशीथ ने कहा, चलो हेम, एक बार, बाबूजी के चरण छू कर उनसे आशीर्वाद तो ले आऊँ।

हेमनलिनी स्तब्ध रह गई। उसने स्वर में जाने कितनी वेदना भर कर कहा, "बाबूजी चले गए निशीथ! वे सदा के लिए हम लोगों को छोड़ गए।"

निशीथ ने सुना तो उसके मन में मृत्यु की सी उदासी छा गई। उसके चारों ओर अन्धेरा सिमट कर घिरने लगा। एक बार उसके हृदय में बुभुक्षित चीत्कार सा निकल पड़ा। कुछ देर बाद उसने कहा, "बाबूजी चले गए हेम, और तुमने मुझसे कभी कहा भी नहीं।"

"तुमने कहने का अवसर ही कब दिया निशीथ! उस दिन तुम इतने

दिन वाद लौटे और तब भी लड़ झगड़ कर भाग गए। फिर वताओ तो, अपने असीम दुख की यह वात तुमसे कव और कैसे कह पाती।" हेम के नयनों से आँसू वहने लगे। निशीथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मन मसोस कर वैठा रहा।

मिल मालिकों का मजदूरों से कोई समझौता नहीं हुआ। उन्होंने मजदूरों की माँगें स्वीकार करने से एकदम इन्कार कर दिया। वे तनिक भी झुकने के लिए तैयार नहीं हुए। इसी प्रश्न पर विचार करने के लिए दल के चुने हुये व्यक्तियों की आज सभा है। यह सभा बहुत ही महत्वपूर्ण और गुप्त है। इसीलिए लता को उसमें भाग लेने का निमंत्रण नहीं मिला है। लता के विश्वसनीय होने पर भी अभी उस पर इतना विश्वास नहीं किया जा सकता। आज लता बहुत सी बातें सोच रही है। अधिकांश बातें गैर सिलसिलेवार हैं। आज की सभा में जो निर्णय होंगे उसका सम्बन्ध उसके पति से भी होगा। उसका मन बार-बार एक अज्ञात आशंका से काँप उठता है। उसे आज की सभा में निमंत्रित नहीं किया गया तो इसका जरूर कोई विशेष कारण ही होगा। लेकिन विपुल ने तो उसे कुछ नहीं बताया। वह तो उससे कभी कोई बात नहीं छिपाता।

लता अकेली बैठी यही सब विचार कर रही थी, तब तक दल के एक आदमी ने आकर उसे एक चिट्ठी दी। चिट्ठी चित्रा की थी। उसमें लिखा था कि लता जहाँ भी हो, तुरन्त इस आदमी के साथ चली आए।

इस दल में रह कर चित्रा की किसी भी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। लता आश्चर्य में पड़ गई। इस समय अचानक ही उसकी क्या आवश्यकता पड़ गयी। वह उस आदमी को जानती है। उसने उससे पूछा, क्या बात है ज्योति सिंह।

ज्योति सिंह ने चारों ओर देख कर धीरे से कहा, "यहाँ से छ मील दूर जंगल में एक गुप्त बैठक हो रही है। उसी में भाग लेने के लिए आपको बुलाया गया है।"

लता ने और कुछ नहीं पूछा । वह बाहर खड़ी हुई गाड़ी में आकर चुपचाप बैठ गई । ज्योति सिंह ने खिड़कियाँ चारों ओर से बंद कर दीं और फिर स्वयं ही उसे चलाने लगा । लता कहाँ जा रही है और वह बैठक किस स्थान पर होगी, उसका उसे कुछ भी पता नहीं था । उसके पास घड़ी भी नहीं थी । गाड़ी की चाल से लगता था कि वह ऊबड़-खाबड़ मार्गों से होती हुई तेजी से दौड़ी जा रही है । लगभग एक घंटे बाद गाड़ी घने जंगल के बीच आकर खड़ी हो गई ।

जयोति सिंह ने दरवाजा खोला और उसे अपने साथ आने को इशारा किया । लता चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलने लगी । टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से होते हुए ये लोग एक खण्डहर के सामने पहुँचे । अन्धेरे में उसका आभास पाते ही लता समझ गई कि यह कोई पुराना मठ है । उसके आस-पास कोई बस्ती नहीं है ।

इतना बड़ा मकान, लेकिन कहीं जरा भी प्रकाश नहीं, आदमी नहीं, आदमी का चिन्ह तक नहीं । सामने के घर में घुसते ही चमगादड़, और सीलन की बदबू से लता का दम घुटने लगा ।

ऊपर जाने के लिए एक छोटी सी सीढ़ी है जिसके तख्ते बीच-बीच से टूट गए हैं । उसी सीढ़ी से चढ़ कर वह एक छोटे से कमरे में पहुँची । ज्योति सिंह भी उसके साथ था । कमरे में एक चटाई के सिवा और कुछ नहीं था । एक कोने में एक मेज पर कुछ मोमबत्तियाँ जल रही थीं । उसके धीमे प्रकाश में कमरे का दृश्य बड़ा बीभत्स दिखाई देता था । उसकी दीवारें काली पड़ गई थीं और उन पर स्थान-स्थान पर काई जमी हुई थी ।

चटाई पर चित्रा गम्भीर मुद्रा में बैठी थी । उसी के पास दूसरी ओर विपुल बैठा था । उनके अतिरिक्त वहाँ लता के परिचित दो-तीन व्यक्ति और थे । विपुल ने लता को देखते ही स्नेहभरे स्वर में पुकारा, "आओ लता मेरे पास आकर बैठो ।"

लता का मन आशंका से भर उठा। उसके हृदय का रक्त धमनियों में बजने लगा। उसके मुँह से कोई आवाज ही नहीं निकली। एक बार उसका चेहरा डर के मारे स्याह पड़ गया। वह जल्दी से विपुल के पास जाकर बैठ गई। विपुल ने स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। लता ने उसकी ओर देखा। वह धीमे-धीमे मुस्करा रहा था। लता को कुछ ढाढ़स बँधा। वह वहाँ बैठे अन्य लोगों की ओर देखने लगी। सभी उसकी ओर अपलक नेत्रों से देख रहे थे। वे सभी गम्भीर थे और उनकी आँखों में एक विचित्र सी क्रूरता भरी थी। उनमें से कुछ लोगों को लता नहीं जानती थी। वे आज न जाने कहाँ से आकर वहाँ उपस्थित हो गए थे। ज्योति सिंह अब भी दरवाजे पर सीना ताने खड़ा था। उसी के पास जमीन पर एक और आदमी बैठा था। उसका शरीर काला गैंडे जैसा था। उसकी छोटी-छोटी आँखों पर भौहों का कोई चिन्ह नहीं था। उसका सर घुटा हुआ था। उसकी मूछें लम्बी और हल्की थीं। इस वीभत्स भयानक आदमी की ओर देख कर लता डर गई।

कुछ देर तक सारे कमरे में निस्तब्धता छाई रही। फिर चित्रा ने गम्भीर स्वर में लता को लक्ष्य करके कहा, "आज की बैठक में एक बहुत महत्व-पूर्ण फैसला होना है लता। इसी फैसले से हम सब का और विशेषकर तुम्हारा भाग्य बँधा है। आज इस बैठक में जिन बातों पर विचार होगा, उससे तुम्हें अवश्य ही दुख होगा। इसीलिए मैंने तुम्हें यहाँ आने का निमंत्रण नहीं दिया था, लेकिन विपुल किसी तरह माना ही नहीं।

लता की छाती जोर-जोर से धड़कने लगी। एक बार उसने निगाह ऊपर उठा कर देखा तो लगा कि सभी उसे निगल जाने को तैयार बैठे हैं। उसने काँपते हुए स्वर में कहा, "मुझे यहाँ क्यों बुलाया गया है?"

चित्रा का स्वर कठोर हो गया। उसने कहा, "जानती हो, तुम्हारे पति शिवदत्त ने क्या किया है।"

एकाएक लता चौंक पड़ी। वही हुआ जिसकी उसे आशंका थी। लता भारतीय नारी है। उसका मन-परिवर्तित जरूर हो गया है किन्तु उसके संस्कार अभी तक ज्यों के त्यों उसके मन में घर किए बैठे हैं। आज ये लोग कौन-सा फैसला करने के लिए यहाँ बैठे हैं। लता का मन एक अनोखे सूनेपन से भर गया।

चित्रा ने कहा, "शिवदत्त ने अपनी दो मिलें बंद करके पाँच हजार मजदूरों को बेकार कर दिया है और उनमें से बहुतों को झूठे इलजाम लगा कर गिरफ्तार भी करा दिया है। केवल यही नहीं, उसने धन का लालच देकर हमारे कुछ आदमियों को भी तोड़ लिया है और उनसे हमारा सारा पता मालूम कर लिया है। उसे यह सब भी मालूम हो गया है कि हम क्या करते हैं और कहाँ रहते हैं। यदि ऐसे आदमी को स्वाधीनता दी गई तो पुलिस किसी भी समय आकर हमें गिरफ्तार कर लेगी और हमारा काम बीच में ही अधूरा रह जायगा। हम लोग अपने शस्त्र व जरूरी कागजात कहाँ रखते हैं यह बात पुलिस को मालूम हो गई है।"

लता एक शब्द भी नहीं बोली। वह नीची निगाह किए चुपचाप सुनती रही।

चित्रा ने गम्भीर स्वर में पूछा, "तो, ऐसे आदमी की सजा क्या होनी चाहिए लता।"

लता के पास ही बैठा एक ठिगना सा आदमी जोर से चिल्ला उठा, "मौत।"

इसी के साथ वह वीभत्स आदमी भी जोर से उछला। उसने अपने भारी और डरावने स्वर में कहा, "मौत।"

इसी के साथ सब लोग चिल्लाने लगे, "मौत, मौत।"

उन सब लोगों के बीच केवल एक ही व्यक्ति ऐसा था जो लता के कन्धे पर हाथ रखे चुपचाप बैठा रहा और वह था विपुल। लता ने एक बार

आँखें उठा कर चित्रा की ओर देखा और उसे देखती रह गई।

उस भयानक आकृति वाले आदमी ने चिल्ला कर कहा, "यह द्रोह है और मौत ही उसके लिए सबसे उपयुक्त सजा है।"

चित्रा ने कहा, "तुम जानती हो लता कि यदि हम लोग पकड़े गए तो हमें फाँसी अवश्य होगी। क्या तुम्हें इस बारे में कुछ कहना है।"

लता के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। उसने सर हिला कर बताया कि उसे कुछ नहीं कहना।

चित्रा ने दृढ़ स्वर में कहा, "तो आप सब लोग उसके लिए तजवीज करते हैं।"

एक बार फिर सब लोग चिल्लाए, "हाँ, मौत, मौत,।" वह ठिगना व्यक्ति उछल कर सामने आ खड़ा हुआ। उसने एक खंजर निकाल कर कहा, मैं छोटा जरूर हूँ लेकिन उसका काम-तमाम करने के लिए मुझ में काफी शक्ति है। शिवदत्त की हत्या का काम मैं अपने ऊपर लेता हूँ।" यह कह कर उसने छूरा ऊपर उठाया और अकड़ कर खड़ा हो गया।"

ज्योतिसिंह ने कहा, "यहाँ से थोड़ी ही दूर खाद इकट्ठा करने का एक गढ़ा है। उसमें लाश को गाड़ देने से दुर्गन्ध नहीं उठेगी। यह काम मैं अपने ऊपर लेता हूँ।"

चित्रा ने कहा, "तो बस यही हमारा अन्तिम फैसला है। अब शिवदत्त को बुला कर उसे सजा सुना देनी होगी।"

चित्रा ने इशारा किया और कुछ लोग चुपचाप वहाँ से उठ कर चले गए।

लता ने सब सुना, किन्तु उसके कान और बुद्धि के बीच में एक ऐसी दुर्भेद्य दीवार खड़ी हो गई थी कि उसे भेद कर बाहर की चीज भीतर पहुँच ही न पाई। जो बाहर था वह केवल बाहर ही रह गया, इसीलिए, शुरू से

आखिर तक जिसने जो भी बात कही वह व्याकुल जिज्ञासु दृष्टि से मूढ़ की तरह उसकी ओर देखती रह गई।

लता जानती थी कि शिवदत्त का जीवन संकट में है किन्तु वह संकट इतना निकट आ पहुँचेगा उसने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। धीरे-धीरे उसकी सुधि खोने लगी। उसके सामने क्या हो रहा है, उसे कुछ भी पता नहीं रहा। उसकी समझ में केवल इतना आया कि अभी कुछ ही समय पश्चात् ये लोग मिल कर शिवदत्त का सदा के लिए अन्त कर देंगे।

लता के मन में आया कि एक बार वह उठ कर इन सब का विरोध करे। वह इन सबसे पूछे कि क्या शिवदत्त का कसूर इतना भयंकर है जो उसे मृत्यु दण्ड दिया जा रहा है, उसके मन में आया कि धरती फट जाय और वह सदा के लिए उसी में समा जाय। लेकिन फिर भी वह चुपचाप बैठी रही। उसके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। उसके नेत्रों में एक बूँद आँसू आकर वहीं सूख गए। अभी शिवदत्त आयेगा और वह उसे यहाँ देखकर क्या समझेगा, यह बात प्रयत्न करने पर भी उसकी समझ में नहीं आई। तभी उसने जो दृश्य देखा वह उसके भीषण से भीषण दुःस्वप्न में भी नहीं आ सकता। उसने देखा कि चार आदमी शिवदत्त को ढकेलते हुए लिए आ रहे हैं। उसके हाथ रस्सी से पीछे की ओर बँधे हैं। उसके कपड़े स्थान स्थान से फट गए हैं। उसके सर से रक्त बह रहा है। लगता है कि किसी भारी हथियार से उस पर वार किया गया है। उसका मुख सूख कर मलिन हो गया है।

उसे देखते लता मूर्छित होकर विपुल पर गिर पड़ी किन्तु उस समय सब लोग शिवदत्त की ओर देख रहे थे। इसीलिए यह बात किसी को भी मालूम नहीं पड़ी।

शिवदत्त ने कुछ भी अस्वीकार नहीं किया। उसने जो-जो बात सुनी थी और जो-जो बातें पुलिस को बताई थी सब ज्यों की त्यों उन्हें बता दी।



आज किसी भी तरह नहीं बच सकते।'

विपुल अब तक कुछ नहीं बोला था, "अब उसने सामने की ओर देख कर कहा, "यह अपना छूरा जरा मुझे तो दिखाना आर्थर।" आर्थर उस ठिगने व्यक्ति का नाम था। उसने छुरा विपुल के पावों के समीप रख दिया।

विपुल ने छूरे को हाथ में लेकर कहा, "यहाँ उपस्थित लोगों में से किसी के पास और कोई शस्त्र तो नहीं है।"

सबों ने सर हिला कर बताया कि किसी के पास कुछ नहीं है।

विपुल ने चित्रा की ओर मुड़ कर कहा, तुम तो सदा अपने पास रिवाल्वर रखती हो चित्रा, जरा देखूँ तो।"

चित्रा ने रिवाल्वर विपुल के हाथ पर रख दी। विपुल ने उसे जेब में रखते हुए हँस कर कहा, "शिवदत्त ने बड़ा भयंकर अपराध किया है और उसके लिए हम सब लोगों ने उसे मृत्यु दण्ड भी दिया है, किन्तु लता ने तो ऐसा नहीं किया।"

लता का नाम सुन कर एक बार शिवदत्त ने उसकी ओर देखा। वह नीचे देखती हुई चुपचाप आँसू बहा रही थी। उसे इन लोगों के बीच देख कर एक बार वह स्तब्ध रह गया। किन्तु उस समय कुछ भी बोलने की स्थिति में वह नहीं था। वह वहीं खड़ा निर्निमेष नेत्रों से लता की ओर देखता रहा।

चित्रा ने कहा, "लता ऐसा कर भी नहीं सकती। वह अभी अपने संस्कारों से मुक्त नहीं हुई है।"

"उसे हम लोगों का साथ देना भी नहीं चाहिए, "विपुल ने लता की ओर देखते हुए स्नेह से पूछा, "क्यों, है न लता।"

इसके उत्तर में लता के मुख से बात नहीं निकली। उसके धीरज का बाँध टूट गया। वह विपुल के चरणों पर लुढ़क गई और उन्हें चुपचाप

अपने आँसुओं से धोती रही।

विपुल ने लता को पीठ सहलाते हुए कहा, "शिवदत्त ने जो कर दिया है वह तो अब किसी भी तरह मिट नहीं सकता। जो होना है, शिवदत्त के रहने न रहने से उसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। फिर क्यों न इस कमजोर और स्वार्थी आदमी को लता के हवाले कर दिया जाय। मुझे विश्वास है कि लता जरूर उसे सुधार कर अपने रास्ते पर ले आयेगी।"

चित्रा को आशंका लगी। उसने पूछा, "आप क्या कहना चाहते हैं?"

विपुल ने दृढ़ स्वर में कहा, "मेरी बात का मतलब सीधा और साफ है।"

तभी वह भीषण आकृति वाला आदमी जोर से उछल कर खड़ा हो गया। उसने भारी और डरावने स्वर में कहा, "नहीं हम ऐसा कभी नहीं होने देंगे।"

आर्थर भी अपनी बाहें उठा कर चिल्लाने लगा, "नहीं, नहीं, हरगिज नहीं।"

उसी के साथ स्वर मिला कर सब लोग चिल्लाये, "नहीं, नहीं।"

चित्रा ने कठोर स्वर में कहा, "आप हम लोगों की राय का अपमान नहीं कर सकते। यदि इतने बड़े अपराध को भी हमने क्षमा कर दिया तो फिर भविष्य में हम लोग कुछ भी काम नहीं कर सकेंगे। हमारा उद्देश्य हमारे जीवन में तो क्या हमारे आगे आने वाली पीढ़ियों के जीवन में भी कभी पूरा नहीं होगा। इतने बड़े अपराध को यूँ ही क्षमा कर देना तो अपराध को बढ़ावा देना है।"

जब लोगों ने चिल्लाना बंद किया तो विपुल ने शान्त स्वर में कहा, लेकिन लोगों के मन में आतंक भर कर भी तो हम काम पूरा नहीं कर सकते चित्रा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए तो हमें इन लोगों की विचार-

धारा ही बदलनी होगी। तभी हमें सच्ची सफलता मिल सकती है। दो-चार आदमियों को इस प्रकार भेड़-बकरियों की तरह मार कर तो हम कभी सफल नहीं हो सकते।"

महान आश्चर्य से चित्रा विपुल की ओर देखती रह गई। आज विपुल कैसी बातें कर रहा है। उसके मन पर आज कैसा परिवर्तन जम कर बैठ गया है।

तभी चित्रा के पास बैठे दो-चार आदमी जोर-जोर से कहने लगे, "अपनी रक्षा के लिए, किसान-मजदूरों की रक्षा के लिए और देश की रक्षा के लिए हम आपकी कोई बात नहीं मानेंगे। इतने लोगों के सामने आप अकेले की बात से कुछ नहीं हो सकता।"

विपुल ने इन लोगों की ओर देखा। उसकी आँखों से चिंगारियाँ निकल रही थीं। उसके मुख पर एक अपूर्व सा तेज प्रकट हो गया था। उसके अधर क्रोध से काँप रहे थे। उसने कठोर और गम्भीर स्वर में कहा, "मेरे क्रोध को चुनैती मत दो रहमान। तुम जानते हो तुम्हारे जैसे हजार लोगों की राय भी मेरी राय के सामने कुछ नहीं। तुम सब लोग जानते हो कि मैं तुम सबको क्षण भर में ही मिट्टी में मिला सकता हूँ। और चित्रा तुम भी मेरा विरोध करके मुझसे क्षमा नहीं पा सकती।"

लता अब भी विपुल के पावों पर पड़ी आँसू बहा रही थी। अब उसने सर ऊपर उठाया। उसने विपुल का ऐसा विकराल रूप कभी नहीं देखा था। उसकी देह अब भी थर-थर काँप रही थी। विपुल ने उसके सर पर स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा, "जाओ लता, मैं शिवदत्त को अभय करता हूँ।"

लता को विश्वास नहीं हुआ। वह चकित सी विपुल की ओर देखने लगी। उसने बहुत ही डरे स्वर में पूछा, "लेकिन इन लोगों ने तो उन्हें क्षमा नहीं किया।"

विपुल ने मुस्कुरा कर कहा, "लोग उसे क्षमा करेंगे भी नहीं लता।

लेकिन ये लोग इस बात को भी खूब जानते हैं कि मैंने जमा किया है उसका आसानी से अनिष्ट नहीं किया जा सकता। बल को बल से ही दबाया जा सकता है, और ये लोग जानते हैं कि इन हाथों में किसी का भी गला दबा देने लायक काफी ताकत है।"

आर्थर का चेहरा स्याह पड़ गया। वह भीषण आकृति वाला आदमी भी चुपचाप जमीन की ओर देखने लगा। ग्लोगिन्स दरवाजे से हट कर कमरे के एक कोने में जा बैठा। इस अंधेरे में उसका चेहरा साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ा।

अन्तिम बैठक हो।"

विपुल ने कहा, "हो सकता है कि हमें अपना कार्य-क्षेत्र बदल देना पड़े। लेकिन इतनी सी बात के लिए इतना निराश और हतप्रभ हो जाना हम लोगों को शोभा नहीं देता चित्रा!"

सब लोग धीरे-धीरे उठ कर बाहर जाने लगे। विपुल ने लता को इशारा किया। वह शिवदत्त का हाथ पकड़ कर दरवाजे की ओर चली। किन्तु तभी विपुल ने उसे पास बुला कर कहा, "राह में तुम्हें कोई भय नहीं है बहन! लेकिन परसों सुबह आश्रम के पास मुझसे मिलना न भूलना। शायद यह हमारी अन्तिम भेंट हो।"

लता ने एक बार व्याकुल होकर विपुल की ओर देखा। उसकी आँखों में न जाने कैसी व्यथा भरी पड़ी थी। इसके बाद लता शिवदत्त का हाथ पकड़ कर चुपचाप बाहर निकल गई।

इधर कुछ दिनों से राकेश बहुत चिन्तित रहता है। उसका किसी भी काम में मन नहीं लगता। उसके मन पर एक भारी बोझ सा जम कर बैठ गया है। उसके सामने सारे स्वप्न साकार होकर खड़े हैं। वह उन्हें पकड़ने को बाहें फैलाता है किन्तु तभी सब एक-एक करके अदृश्य हो जाते हैं। उसके सामने केवल एक सूनापन रह जाता है। जिसमें उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता और वह लाचार सा उस शून्य को देखता रह जाता है।

गत एक सप्ताह से वह अपने अनुसन्धान में लीन है। शीशों पर झुके-झुके उसे खाने-पीने की भी रुचि नहीं है। सफलता उसे सामने दिखाई दे रही है। वह दौड़ कर उसे पकड़ लेना चाहता है किन्तु जितना ही वह

अभाव में उसका अनुसंधान वीच ही में रुक जाता है। सफलता उसके निकट आकर लौट जाती है। वह सोचती है कि इस देश में रह कर सीमित साधनों के वीच उसका अनुसन्धान कभी पूरा नहीं होगा। तव उसे लगता है कि वह पागल हो जायगा। वह मन ही मन विदेश जाने का संकल्प किया करता है। वहाँ सारे साधन होंगे, सारे यंत्र होंगे। वहाँ जाकर वह अवश्य सफल हो जायगा। इन सीमित साधनों के वीच ही उसे जो सफलता मिली है उससे उसके मन में आशा की एक किरण जाग उठी है। उसी किरण के सहारे वह पथ पर आगे वढ़ता जा रहा है।

वह निरुपमा और कल्पना की वात सोचता है। ये दोनों अव भी उसके पास धरोहर के रूप में रह रही हैं। यदि वह विदेश गया तो उनका क्या होगा। उनकी माँ के सामने राकेश ने प्रतिज्ञा की थी कि वह कभी भी उन्हें अपने से अलग नहीं होने देगा। दुख-सुख में वह सदा ही उनका साथ देता रहेगा। और निरुपमा भी तो कभी अपने कर्तव्य से एक पग पीछे नहीं हटी है। इन दिनों उसमें जाने कैसा परिवर्तन आ गया है। वह अपनी सुधि भूलकर भी राकेश की सेवा किया करती है। वह उसका सारा काम अपने हाथ से करती है। यदि राकेश अपने हाथों से कुछ भी करे तो निरुपमा उसका तिरस्कार करती है। वह भोजन वनाती है, घर की सफाई करती है। किताबें औरवस्त्र ठीक करके रखती है। और राकेश कहीं वाहर जाता है तो खिड़की से खड़ी होकर उसकी राह देखती रहती है। उसे लगता है मानों राकेश के विना उसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है। उसके मन का अन्धेरा धीरे-धीरे दूर हो रहा है और राकेश हाथ में दीपक लिए उसके अन्तर में समाता चला जा रहा है।

निरुपमा विधवा है। उसने जीवन भर विवाह न करने की शपथ ली है। किन्तु वह अपना सारा जीवन राकेश के चरणों में विता देना चाहती है। वह चाहती है कि सदा एक दासी की भाँति उसकी सेवा किया करे।

राकेश के पास रहकर उसे आन्तरिक सुख मिलता है। उसका मन शान्ति से परिपूर्ण हो उठता है। वह शान्ति उसे बड़ी मधुर लगती है और वह चाहती है कि युगों तक चुपचाप बैठी उसी में खोई रहे।

निरुपमा के इस स्नेह का राकेश को भी कुछ-कुछ आभास मिल गया है। निरुपमा उसे आरम्भ से ही अच्छी लगी है। वह मन ही मन उसकी भक्ति करता है, उस पर श्रद्धा रखता है किन्तु एक व्यक्ति के कल्याण के लिए वह विश्व भर का कल्याण नहीं छोड़ सकता। उसे लगता है कि मानव कभी भी शंका रहित और निर्भय होकर नहीं बैठ सकता। एक अज्ञात सा भय सदा ही उसके मन को कुरेदा करता है। उसे लगता है कि विकराल काल अपनी लम्बी-लम्बी काली बाहें फैलाए मानव को निरन्तर अपने अन्धेरे आँचल में छिपाता जा रहा है। उसका मन जाने कैसी निराशा और भय से भर जाता है और वह मानव को इस भय से सदा के लिए मुक्ति दिलाने की मन ही मन प्रतिज्ञा करने लगता है।

उस दिन उसे जो सफलता मिली उससे उसके मन में एक नई आशा का संचार हुआ है, उसे अपने सामने एक नया पथ खुलता दिखाई दे रहा है। उसे विश्वास है कि उस पर चलकर वह अवश्य ही मंजिल तक पहुँच जायगा।

नहीं, वह पीछे नहीं रह सकता। दुनियाँ आगे बढ़ रही है। वह भी आगे बढ़ेगा। उसमें शक्ति है, वह कभी पीछे नहीं रह सकता। वह जैसे भी होगा अपने अनुसन्धान को जरूर पूरा करेगा। वह विदेश जायगा। जरूर विदेश जायगा। अपने मार्गों में वह किसी भी बाधा को स्वीकार नहीं कर सकता। वह मन ही मन संकल्प करने लगा।

एक दिन उसने निरुपमा से कहा, "मैं सोचता हूँ निरुपमा कि यहाँ रहकर मैं कभी भी अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच सकूँगा। मैं अपने

अनुसन्धान को कभी भी पूरा नहीं कर सकूँगा। मैंने देखा है कि सफलता बार-बार मेरे पास आकर लौट जाती है। आशा की एक किरण बार-बार मेरे हृदय को आलोकित करके अदृश्य हो जाती है। मैं उसे पकड़ने का निरन्तर प्रयत्न करता रहा किन्तु मुझे कभी सफलता नहीं मिली। इसलिए सोचता हूँ कि यहाँ रहकर मेरा उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता।"

निरुपमा का मन आशंका से भर उठा। उसने शंकित स्वर में पूछा, "हम लोगों को छोड़कर कहाँ चले जाने का इरादा है डाक्टर?"

राकेश ने कहा, "मैं विदेश जाना चाहता हूँ निरुपमा! वहाँ जाकर मेरा अनुसन्धान पूरा हो सकेगा। मैं एक स्वप्न देखा करता हूँ। बड़ा मधुर स्वप्न मैं देखा करता हूँ कि मानव सदा के लिए मृत्यु के पंजे से मुक्त हो गया है। उसके सारे दुख-दर्द दूर हो गए हैं। और एक नई सृष्टि ने जन्म लिया है। एक नए विधान, एक नए कानून के अन्तर्गत प्रकृति चल रही है। वहाँ मानव का मनोविज्ञान दूसरा है। उसकी विचारधारा दूसरी है। वह स्वप्न बड़ा सुन्दर है निरुपमा। मैं उसी में खो जाता हूँ। तब मुझे किसी बात की सुधि नहीं रहती। मेरे मन में एक विचित्र सी प्रेरणा उपजती है और दूने उत्साह से काम में लग जाता हूँ। किन्तु मंजिल सामने होते हुए भी मैं वहाँ पहुँच नहीं पाता। मेरे मार्ग में अन्धेरा छा जाता है और मैं पत्थरों से टकरा कर गिर पड़ता हूँ। यहाँ रहते हुए उन पत्थरों को कभी भी मार्ग से नहीं हटाया जा सकता।"

"क्या आपको पूरा विश्वास है कि यहाँ रहते आपका अनुसन्धान कभी पूरा ही नहीं हो सकेगा।"

"हाँ निरुपमा, विदेश गए बिना यह काम कभी पूरा नहीं होगा। अभाव के बीच रहकर मैं सफलता को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। उस दिन जो उस महान प्रकाशपुंज के मुझे दर्शन हुए उससे मेरा मन आनन्द से

परिपूर्ण हो उठा। मैंने अपने एक शव को पाँच घंटे तक जीवित रखा। यह काम बहुत बड़ा है। उसमें जरा सी भी उपेक्षा से सर्वनाश हो सकता है। यहाँ रहकर सदा ही मेरे साधन सीमित रहेंगे। मुझे यंत्रों की आवश्यकता है, पुस्तकों की आवश्यकता है, औषधियों की आवश्यकता है, जिनके सहारे चलकर मैं मंजिल तक पहुँच सकूँ। इस अभागे देश में ये चीजें मुझे कभी प्राप्त नहीं हो सकतीं।"

निरुपमा का मन घोर निराशा से भर उठा। उसे कभी भी आशा नहीं थी कि राकेश उसे इतनी जल्दी इस प्रकार छोड़कर चला जायगा।

उसने कहा, "आपने जाने का निश्चय ही कर लिया है डाक्टर तो किसी भी अधिकार के बल पर आपको रोक तो सकूँगी नहीं।" उससे बोला नहीं गया। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

राकेश को बड़ी व्यथा हुई। उसने कहा, "एक दिन तुम्हारी माँ के सामने तुम्हें आश्रय में रखने का वचन दे आया था निरुपमा! वह वचन मैं आज भी भूला नहीं हूँ। उस दिन से जीवन में जो गाँठ पड़ी है, वह कभी खुल नहीं सकती। मैं अपना बड़े से बड़ा अहित कर लूँगा, लेकिन ऐसा कोई काम नहीं करूँगा जिससे तुम्हें दुख हो। तुम चाहो तो मैं अपना जाना स्थगित भी कर सकता हूँ।"

निरुपमा स्थिर हो गई। उसने कहा, "यदि किसी दुर्बलता के क्षण में आपने कोई वचन दे दिया है तो उसके लिए आपको बाँधकर रख लेने की हीनता मुझ में नहीं है। उस दिन आपसे जबरन ही तो वचन ले लिया गया था, उसके बदले आपने हमें बहुत दिया है। अब आपसे कुछ भी पाने की आकांक्षा शेष नहीं रह गई है। आज मैं आपको उस बंधन से सदा के लिए मुक्त करती हूँ। आपके मार्ग में बाधा बनकर हम लोग कभी भी खड़ी नहीं हो सकतीं। यदि किसी दिन अनजाने में ऐसा अपराध हो भी गया तो उसके लिए हमें कभी शान्ति नहीं मिलेगी।"

राकेश स्तब्ध रहा गया। निरुपमा आज कैसी बातें कर रही है। उसने कहा, "ऐसा न कहो निरुपमा। इस बन्धन के बल पर ही तो मैं अब तक इतना स्थिर रह सका हूँ। यह बन्धन न होता तो मैं अब तक कब का टूट-फूट कर बिखर गया होता। इसका सहारा लेकर ही तो मैं मंजिल की ओर बढ़ता रहा हूँ निरुपमा। तुमने मुझे जो सुख दिया है उसे मैं कभी नहीं भुला सकता। तुम लोगों ने मुझ पर जो उपकार किया है वह मेरे जीवन में अक्षय बन कर रह गया है। मुझे लगता है कि तुम्हारे बिना मेरा जीवन कुछ है ही नहीं। तुम्हारे बिना मैं एक पल भी दृढ़ होकर पथ पर नहीं चल सकता। मेरी विजय ही तुम्हारी विजय है निरुपमा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जहाँ जैसी स्थिति में भी हूँगा तुम्हें कभी नहीं भूलूँगा।"

निरुपमा की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने पूछा, "यहाँ हम लोगों को किसके सहारे छोड़ जाओगे डाक्टर?"

"निशीथ को तो तुम जानती हो निरुपमा। हेम ने उसे पूर्णतया सुधार लिया है। उसका जीवन एक सीमा में बँध कर चल रहा है। हेम के कहने पर ही उसने शराब छोड़ दी है। हेम ने उससे जीवन भर के लिए प्रतिज्ञा करा ली है। मुझे विश्वास है कि मैं कहूँगा तो वह अस्वीकार नहीं करेगा मैं जानता हूँ कि अपने उत्तरदायित्व को वह अब मुझसे अधिक निभा सकता है।"

निरुपमा ने कुछ नहीं कहा। उसने आखों में आँसू भरे चुपचाप स्वीकृति दे दी।

नियत समय पर लता आश्रम के निकट पहुँच गई। इन दिनों उसके अन्तर में जाने कैसा द्वन्द्व मचा हुआ है। उसे अपना जीवन विषाक्त सा लगता है। चित्रा पर उसे सबसे अधिक क्रोध है। एक दिन वही तो उसे उठा कर उन लोगों के बीच ले गई थी। वही चित्रा उसका इस प्रकार अपमान करेगी, इसकी उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी।

चित्रा को मित्र के रूप में समझ लेने का दुःसाहस तो किसी भी स्त्री को हो ही नहीं सकता। लता भी उससे स्नेह नहीं कर सकी है। किन्तु यह मान कर कि चित्रा सभी गुणों में उससे श्रेष्ठ है, उसने अपने मन की भक्ति उसे समर्पित की थी। लेकिन शिवदत्त का चाहे कितना ही बड़ा अपराध क्यों न हो, एक नारी होकर इतनी आसानी से उसकी हत्या का आदेश दे देने से उसकी सारी भक्ति धुल-पुछ कर साफ हो गई। एक स्त्री के पति को उसके सामने ही मृत्यु दण्ड देने में उसे जरा भी दुविधा नहीं हुई। उसने एक बार भी संकोच नहीं किया। उस दिन उसे यकायक मालूम हुआ कि स्नेह और करुणा के नाम पर चित्रा से कुछ भी माँगने के समान मजाक दुनियाँ में दूसरा नहीं है। उस बात की कल्पना करके लता का मन गत दो दिनों में बार-बार रोमांचित हो उठा है।

चित्रा के जीवन का इतिहास, उसके प्रथम यौवन की दुर्भाग्यमय विलक्षण कहानी क्या है? यह लता को ज्ञात नहीं। विपुल उसे कहाँ और कब से जानता है, यह भी उसे नहीं मालूम। लेकिन आज उसे उन सब बातों को जानने की आवश्यकता भी नहीं है। वह चित्रा से जीवन में भी कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहती। वह तो विपुल के बुलावे पर एक बार उससे मिल भर लेना चाहती है। और इसीलिए आज वह नियत समय पर यहाँ पहुँच गई है।

विपुल ने उसे देखते ही कहा, "तुम आ गई चित्रा। मैं जानता था तुम जरूर आओगी।"

लता ने कहा, "मेरे भैया ने मुझे बुलाया था, मैं फिर भी न आती ऐसी अनहोनी बात क्या दुनियाँ में दूसरी भी हो सकती है।"

विपुल ने कहा, "उस दिन अचानक ही जो कुरुचिपूर्ण काण्ड हो गया है, उसके लिए इस दल के लोगों को तुम क्षमा कर देना लता! ये लोग हत्या और रक्त के सिवा और कुछ जानते ही नहीं। ये लोग समझते हैं कि क्रान्तिकारियों की बस यही चरम शिक्षा है।"

"जो तुमने उन्हें सिखलाया है भैया! वे उसके सिवा और कुछ जानेंगे कैसे?"

विपुल ने कहा, "तुम जानती हो लता। व्यर्थ नर-हत्या का मैं कभी भी पक्षपाती नहीं रहा। उससे मैं मन ही मन घृणा करता हूँ। मैं अपने हाथों से एक चींटी भी नहीं मार सकता। लेकिन जिन लोगों ने हमारा सब कुछ छीन लिया है, जिन्हें हमारी हत्या का अधिकार प्राप्त है, उन्हें क्षमा कर देनी की धर्म बुद्धि नहीं है, लता।"

लता ने कहा, "तो उस दिन का तुम्हारा वह फैसला क्या बिल्कुल ही स्वाभाविक था भैया?"

"नहीं लता, मैं जानता हूँ शिवदत्त दुर्बल है। वह किसी बाधा को देखकर आगे बढ़ना नहीं चाहता। उसे मार्ग दिखाने की जरूरत है। मुझे आशा है लता कि तुम प्रयत्न करके उसे एक दिन जरूर ही अपने रास्ते पर ले आओगी। फिर बोलो यह व्यर्थ नर-हत्या नहीं हुई तो और क्या हुआ?" विपुल मुस्कुराने लगा।

लता ने कहा, "मुझे आशीर्वाद दो भैया, मैं अपने उद्देश्य में सफल होऊँ।"

विपुल ने कहा, "तुम सदा सुखी रहो लता। तुम इस बात का सदा प्रयत्न करती रहना कि असमर्थ और कमजोरों के न्यायोचित दावे जबरदस्तों के बाहुबल के आगे कभी परास्त न होने पाएँ। लम्बी-चौड़ी जमीन, नद-नदी और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ ही हमारा देश नहीं है लता। हमारा सच्चा देश इन गरीब किसानों में है। केवल कुछ लोगों की हत्या कर देने से या उनका धन छीन लेने से ही इनकी सेवा नहीं की जा सकती। उनकी सच्ची सेवा उनका स्तर ऊँचा उठाने से ही हो सकती है। तुम इन्हीं किसान मजदूरों के बीच काम करती रहना। इन्हीं के बीच रहकर तुम्हें जीवन का सच्चा सुख मिलेगा।

लता ने स्थिर स्वर में कहा, "मैं तुम्हारी सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो सकूँगी भैया। तुम्हारे इस काम में किसी भी स्वार्थ, सन्देह और क्षुद्रता के लिए स्थान नहीं है। यदि किसी दिन तुम लौटकर आए तो देखोगे कि तुम्हारी लता अपने पथ से एक पग भी पीछे नहीं हटी है।"

विपुल बोला, "जीवन में केवल अर्थ ही सब कुछ नहीं है। संस्कृति और कला का भी उसमें बड़ा स्थान है। तुम अपनी कला से कभी भी विमुख न होना। तुम एक दिन विश्व की महान कलाकार होगी। तब तुम विश्व को एक ऐसा आनन्द प्रदान कर सकोगी जिसकी दुनियाँ में कहीं भी कोई तुलना नहीं है। मेरी यह बात तुम सदा याद रखना बहन।"

लता के मन में क्या आया कि वह विपुल के चरणों के पास बैठ गई। उसने आतुर स्वर में कहा, "आज रो-रोकर प्रलय ला देने को मन करता है भैया! भविष्य में सबों को सुखी रहने का अधिकार है। केवल नहीं है तो एक तुम्हीं को। मैं इतनी तुच्छ हूँ लेकिन मुझको भी तुम जी खोल कर आशीर्वाद दे रहे हो। सिर्फ तुम्हीं को आशीर्वाद देने वाला कोई नहीं है जो एक बार कह सकता कि सुखी रहो। तुम बड़े हो, चाहे जो हो,

किन्तु तुम्हें भी मैं ठीक यही कहकर आशीर्वाद दूँगी कि तुम भी भविष्य में सुखी हो सको।"

विपुल का हृदय गद्-गद् हो गया। उसने कहा, "छोटों का अशीर्वाद बड़ों को नहीं लगता बहन! और फिर मेरे लिए आशीर्वाद क्या। मेरे सामने तो सुख-दुख सब समान हैं। तूफान और मरण की शान्ति में मुझे कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। प्रलय के समय भी चट्टान की भाँति खड़े रहने की मुझमें शक्ति है लता! और फिर एक दिन तुमने ही तो कहा था कि तुम पत्थर हो। उस दिन की वह बात क्या इतनी जल्दी भूल गई?"

"और तुम भैया, उस छोटी-सी बात को अब तक हृदय में सँजोए बैठे हो।"

विपुल हँस पड़ा। उसने कहा, "तुम्हारी वही एक बात नहीं और भी बहुत सी बातें हैं जिन्हें हृदय में ज्यों का त्यों सुरक्षित करके रख छोड़ा है। यदि कभी जीवन में फिर मिलेगी तो देखोगी कि वे बातें मेरे मन में कैसी जमकर बैठी हैं।"

"अच्छा तो भैया, तुम कहाँ और कितने समय के लिए जा रहे हो? यह तो तुमने बताया ही नहीं।"

"यह तो मैं स्वयं भी नहीं जानता बहन। मैं तो केवल इतना जानता हूँ कि अब यहाँ मेरा रहना नहीं हो सकता। यह दुनियाँ बहुत बड़ी है और इस दुनियाँ में किसान-मजदूरों की कहीं भी कमी नहीं। मैं सोचता हूँ कि केवल रक्तपात करने से ही हमारी समस्या हल नहीं हो सकती। हमें कोई दूसरा मार्ग ढूँढ़ना होगा। रक्त का नहीं शान्ति का मार्ग। शान्ति में बड़ी शक्ति है लता! मेरा विश्वास हो गया है कि केवल उसी मार्ग पर चल कर हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकते हैं। हत्याएँ करके

और रेलों को गिराकर जनता को आतंकित कर देने से ही हमारा कल्याण नहीं हो सकता। हमारा सच्चा कल्याण उन गरीब की दशा सुधारने में ही निहित है। आतंक से प्राप्त किए गए अधिकार कभी भी स्थायी नहीं हो सकते। उसके लिए हमें इन किसान-मजदूरों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना है। हमें उन्हें शिक्षा देनी है ताकि वे समझ सकें कि उनके अधिकार क्या हैं। केवल तभी वे उन्हें प्राप्त करने के लिए सच्चे हृदय से संघर्ष कर सकेंगे। उन्हें बहका कर या दबाव डालकर हड़ताल मात्र करा देने से तो उनकी समस्या कभी हल नहीं हो सकती।"

"इन बातों को तो तुम्हीं जानो भैया, लेकिन क्या चित्रा को अपने साथ नहीं ले जाओगे। मुझे विश्वास है कि वह आपकी बहुत सहायता कर सकती है।"

विपुल हँस पड़ा। उसने कहा, "चित्रा कल चली गई बहन, वह मेरे पथ पर चलने को किसी तरह भी तैयार नहीं हुई। उसका विश्वास था कि बिना जोर जबर्दस्ती के, बिना रक्तपात के, हम अपने अधिकारों को कभी प्राप्त नहीं कर सकते। दुनियाँ में माँगने से कोई कुछ नहीं देता।"

लता के मुख से एक धीमी सी उसाँस निकल गई। उसने कहा, "चित्रा बड़ी कठोर है भैया! लेकिन क्षमा करना। आज एक बात पूछती हूँ। क्या चित्रा से आपका कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा?"

विपुल गम्भीर हो गया। उसके मुख पर जाने कैसी वेदना व्याप्त गई। उसने अति करुण स्वर में कहा, "वह आज रहने दो बहन। यह बड़ी लम्बी कहानी है। किसी दिन तुम्हें एक-एक करके सभी बातें बता दूँगा। आज केवल इतना समझ रखो कि चित्रा की मैं बहुत इज्जत करता हूँ। वह दुनियाँ में कभी भी ऐसा काम नहीं करेगी जिससे देश या इन किसान-मजदूरों का अहित हो।"

लता ने अनुभव किया कि विपुल के मन में एक शोला सुलग रहा है।

जिसके ताप से उसका मन झुलसा जा रहा है। उसने कहा, "तुम दोनों के मार्ग भिन्न हैं भैया, किन्तु तुम फिर भी उस पर खुले हृदय से अपनी श्रद्धा बिखेर रहे हो। बताओ तो, इतना विशाल हृदय तुमने पाया कहाँ?"

विपुल ने कहा, "हमारे मार्ग भिन्न हैं बहन लेकिन उद्देश्य तो भिन्न नहीं हैं। हम लोग एक ही मंजिल पर पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु यदि राह पर चलते-चलते किसी चौराहे पर आकर हम लोग मिल जाएँ तो हो सकता है कि हम फिर से एक ही मार्ग पर चलने लगें।"

"तुम्हारी यह कामना सत्य हो भैया। मैं सच्चे हृदय से प्रार्थना करती हूँ कि तुम्हारी यह आकांक्षा अवश्य पूरी हो।"

इस बात का विपुल ने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ देर बाद लता ने आहिस्ता से पूछा, "अच्छा, भैया, अगर मैं तुम्हारी चित्रा होती तो क्या तुम मुझे इसी तरह अपने पथ से अलग कर देते।"

विपुल आनन्दित हृदय से बोला, "लेकिन तुम तो चित्रा नहीं हो, तुम मेरी बहन हो, इसीलिए मैं तुम्हें अपने पथ से अलग नहीं कर सकता। मैं यहाँ तुम्हें काम करने के लिए छोड़ सकता हूँ।"

लता ने पूछा, "किसका काम, तुम्हारा या चित्रा का।"

"किसी का भी सही।"

"नहीं भैया। तुम चाहे जो भी कहो, लेकिन तुम्हारा मार्ग छोड़ दूँगा। इस बात का ख्याल करके तो मैं एक दिन भी जीती नहीं रह सकती। तुम्हारा काम आदमी को आदमी बनाता है भैया! मैं तुम्हारा ही काम करती रहूँगी, जब तक कि तुम मुझे अपनी इच्छा से छुट्टी न दे दो। कारखानों की मजदूर स्त्रियों की हालत को मैं अपनी आँखों से देख आई हूँ। उनका पाप, उनकी कुशिक्षा, उनकी पशु जैसी अवस्था, इनमें से किसी का

आज राकेश जा रहा है। निरुपमा के कहने पर उसने अपना जाना दो दिन के लिए स्थगित कर दिया था। निरुपमा ने करुणा भरे स्वर में कहा था, "इतने दिनों के लिए विदा ले रहे हो, डाक्टर, लेकिन क्या फिर भी दो दिन के लिए और रुक नहीं सकते।"

राकेश निरुपमा की इस करुण प्रार्थना को ठुकरा नहीं सका था और उसने चुपचाप अपनी स्वीकृति देदी थी। इसी बात को लेकर निरुपमा मन ही मन आनन्दित हो रही थी। केवल उसी के कहने पर तो डाक्टर ने अपनी यात्रा स्थगित की थी। यह बात उसके लिए कम गौरव और सुख की नहीं थी। राकेश उससे कितना स्नेह करता है, उसे कितना मानता है यही सोचकर उसका मन पुलकित हो रहा था। किन्तु आज जब उसके जाने का समय आ ही गया तो वह व्यथा से पागल हो गई। उसके मन में जाने कैसा होने लगा। एक विचित्र से सूनेपन से उसका हृदय भर गया। उसे अपने चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई देने लगा।

जब से उसने राकेश के जाने की बात सुनी है, उसका तन शिथिल हो गया है। किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता। उस दिन के बाद से उसने अनेकों रातें रो-रोकर बिताई हैं। वह अपने मन की व्यथा किससे कहे। उसका तो अपना कहने को कोई भी नहीं है। वह अपने चारों ओर दृष्टि उठाकर देखती है तो उसे बहुत दूर तक कहीं कोई भी दिखाई नहीं देता। तब उसका मन जाने कैसी अशान्ति से भर जाता है।

निरुपमा को लगता है कि मनुष्य का जीवन एक चौराहे के समान है जहाँ वे सब क्षण भर को मिलकर फिर सदा के लिए एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं।

वह सोचती है कि राकेश के बिना तो उसका जीवन कुछ भी नहीं है। लेकिन वह तो बेबस है। उसका किसी पर भी कोई अधिकार नहीं है। वह प्रयत्न करके भी राकेश को नहीं रोक सकती।

और कल्पना को जाने क्या हो गया है। उसकी वह चपलता इन दो-चार दिनों में ही जाने कहाँ गायब हो गई है। उसे आज जैसे अपनी ही सुधि नहीं। वह हर समय विरहिन की भाँति आँसू बहाया करती है। वह नहीं जानती कि यह सब क्या है। उसे स्वयं पर आश्चर्य होता है। किन्तु वह लाचार है। उसकी वह अश्रुधारा जैसे हजारों लाखों बाँध लगा देने पर भी नहीं रुकेगी। वह तो जैसे बहती ही जायगी। सभी बन्धनों को तोड़कर बहती रहेगी।

राकेश देखता है तो उसे दुख होता है। वह जानता है कि निरुपमा किसी का भी सहारा सरलता से स्वीकार नहीं करेगी। किन्तु उसकी आँखों में स्वप्न नाच रहे हैं। वह अपना जाना किसी भी भाँति स्थगित नहीं कर सकता।

और आज उसके जाने का दिन आ गया। उसने निरुपमा के पास जाकर कहा, "निशीथ के पास रहकर तुम्हें कभी कोई कष्ट नहीं होगा निरुपमा। वह अपने उत्तरदायित्व को मुझसे अधिक समझता है।

निरुपमा ने आँखों में आँसू भर कर कहा, "जाओ डाक्टर, मेरा आशीर्वाद है कि तुम विजयी बनकर लौटो। मैं सदा ईश्वर से तुम्हारी सफलता के लिए प्रार्थना करती रहूँगी। निरुपमा का कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

राकेश ने उसकी पीठ पर स्नेह से हाथ रखकर कहा, "रो रही हो निरुपमा। इस क्षणिक विदाई के लिए अपने इतने बहुमूल्य आँसू बहा रही हो।"

निरुपमा ने सिसकियाँ लेते हुए कहा, "नहीं, आज रोऊँगी क्यों, डाक्टर! आज तो मेरे लिए सबसे खुशी का दिन है। आज तुम विजयी होने जा

रहे हो। इससे बड़ा सौभाग्य मेरा दुनियाँ में दूसरा नहीं। मैं उस दिन की राह देखती रहूँगी, जिस दिन तुम विजय का मुकुट पहन कर वापस लौटोगे। मैं आरती का थाल सजाए तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी। तुम वापस आओगे। मैं तुम्हारे चरणों पर पुष्पों की माला बिखेर दूँगी। मैं तुम्हारी आरती करूँगी। उस दिन घर के दीपक जलेंगे। उस दिन के वे क्षण मेरे जीवन के सबसे सुनहरे क्षण होंगे डाक्टर!" कहते-कहते निरुपमा कल्पना में खो गई।

राकेश का मन गद्‌गद् हो उठा। उसने कहा, "तुम्हारी यह बात एक दिन जरूर सत्य होगी निरुपमा। उस दिन विजय का सेहरा मेरे सिर नहीं, तुम्हारे सिर बँधेगा। सच कहता हूँ कि यदि मरुस्थल से मेरे इस जीवन में तुम्हारा पदार्पण नहीं होता तो मेरा जीवन व्यर्थ ही चला जाता। मुझे कभी भी सफलता नहीं मिलती। तुमने मुझे जो दिया उसे मैं जीवन में कभी भी नहीं भुला सकता। उसका ऋण मैं इस जीवन में कभी भी नहीं उतार सकता। तुम मुझसे स्नेह करती हो। मेरे लिए इतना कष्ट सह रही हो, यह बात सदा मेरे मन में अक्षय बनी रहेगी। आज तुम्हें भी एक प्रतिज्ञा करनी होगी निरुपमा, यदि तुम्हारे जीवन में कभी कोई दुर्बलता के क्षण आएँ, यदि कभी भी तुम्हें कोई कष्ट आ घेरे, तो मुझे याद करना नहीं भूलोगी। तुम्हारे याद करते ही मैं जहाँ भी हूँगा, तुम्हारे पास दौड़ आऊँगा।"

निरुपमा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप बैठी आँसू बहाती रही।

कुछ देर बाद राकेश बोला, "कल्पना का ध्यान रखना निरुपमा। वह बहुत भोली है। उसे जीवन की कटुता का अनुभव नहीं। तुम सदा उसे सहारा देती रहना। और तुम निरुपमा। तुम विधवा हो, केवल इसीलिए अपने जीवन को मत गला डालना। तुम इस बात को सदा याद

रखना कि सभी धर्म असत्य हैं। आदिम दिनों के कुसंस्कार हैं। विश्व-मानवता के इतने बड़े शत्रु और कोई नहीं। तुम विश्व के सामने चिल्ला-चिल्ला कर इस बात को जता देना कि तुम्हारे मन में उनके प्रति जरा भी भक्ति नहीं है। जरा भी श्रद्धा नहीं है।"

निरुपमा चुप बैठी रही। उसका मन विषाद से भर गया। जैसे ऊपर कोई बोझ सा लद गया हो।

राकेश ने कहा, "युग-युग में मनुष्य की आवश्यकता के अनुसार सत्य को नया रूप धारण करके आना पड़ा है। यह धारणा कुसंस्कार है कि अतीत में जो सत्य था उसे वर्तमान में भी सत्य स्वीकार करना ही पड़ेगा। मानव की आवश्यकता पर नए सत्य की सृष्टि करना ही सबसे बड़ा सत्य है। इस बात को तुम कभी मत भूलना। हमारे आज के समाज, हमारी आज की सभ्यता से बढ़कर झूठी चीज इस दुनियाँ में दूसरी नहीं। क्या धर्म की सारी रुकावटें इसी अभागे देश के लिए हैं, निरुपमा ?"

निरुपमा को बड़ी साध थी कि दुर्दिन की उस अग्नि-परीक्षा में अपने-पराए की समस्या का वह अन्तिम समाधान करा लेगी किन्तु आज जाने कैसी माया-जाल में फँसकर एक रहस्य उसके जीवन में अभिभासित ही रह गया। और वह बिना कुछ बोले ही चुपचाप बैठी रही।

आज राकेश कितना अधिक निःसहाय है, कितना ज्यादा अकेला है, इस बात को निरुपमा से अधिक और कोई नहीं जान सकता। निरुपमा जमीन पर बैठ गई। उसने अपना माथा राकेश के चरणों पर रख दिया।

राकेश ने गद्गद् कण्ठों से कहा, "अब मैं अपना सारा जीवन मनुष्य और देश की सेवा में लगा दूँगा। तुम्हारा सहारा और तुम्हारी प्रेरणा लेकर ही मैं मानव को मृत्यु से मुक्ति दिला सकूँगा निरुपमा।"

और निरुपमा उसके चरणों पर पड़ी चुपचाप आँसू बहाती रही।

× × × ×

जब राकेश जहाज पर चढ़ने लगा तो मन पर जाने कैसी उदासी छा गई। उसने हठात् ही निरुपमा के पास आकर कहा, "तुम चाहो तो मेरे साथ चल सकती हो।"

निरुपमा को विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा, "तुम्हारे काम में बाधा जो पड़ेगी।"

"बाधा नहीं पड़ेगी, यह बात तो मैं निश्चय से कह नहीं सकता।"

"फिर भी मुझे ले जाने को कह रहे हो?"

"मेरे साथ न जाना चाहो तो मैं जिद नहीं करूँगा। वहाँ तुम्हें सुख नहीं मिलेगा, तुम कल्पना के साथ यहीं रह सकती हो।"

"सुख नहीं मिलेगा, केवल यही भय दिखाकर मुझे छोड़ जाना चाहते हो। अच्छा, ऐसा ही सही। लेकिन विदा होने से पूर्व प्रतिज्ञा करके जाओ कि मुझे कभी नहीं बिसराओगे।"

राकेश ने एक बार निरुपमा की ओर देखा। उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। वह एक भी शब्द कहे बिना जहाज पर चढ़ गया।

आकाश में धीरे-धीरे बादल इकट्ठे होने लगे। रात को कुछ बूँदें पड़ी थीं और आज दोपहर से जोर की हवा चल रही थी।

निरुपमा को लगा जैसे वह पागल हो जायगी। आँसुओं के जिस बाँध को वह यत्न से हृदय में सँजोकर रखे हुए थी, दुर्दिन की इस विरह-वेला में वह अचानक ही टूट गया। उसके चारों ओर एक अथाह सूनापन उभड़ने लगा। जिसका न ओर न छोर। विराम नहीं, विश्राम नहीं। इतने बड़े दुर्भाग्य की बात उसके जीवन में दूसरी नहीं। उसे कुछ देर के लिए मानो कुछ होश नहीं रहा। वह अपलक नेत्रों से दूर जहाज पर खड़े हुए राकेश को देखती रही।

तभी जाने कहाँ से आकर विपुल राकेश के बराबर में खड़ा हो गया। उसने हँसकर राकेश से कहा, "मैंने अपना कार्यक्षेत्र बदल लिया है। मैं

भी तुम्हारे साथ चल रहा हूँ।"

किन्तु राकेश ने मानो सुना नहीं। वह क्षितिज तक जाती हुई समुद्र की विशाल लहरों को अपलक निहार रहा था।

जहाज चल पड़ा। अचेतन जड़ मूर्ति की तरह कुछ क्षण निश्चल रह कर निरुपमा अकस्मात् ही रो उठी। जितनी दूर भी उसकी दृष्टि जा सकती थी वह एकाग्र दृष्टि से चुपचाप देखती रही। आज एक भयंकर प्रलयकारी तूफ़ान ने उसके मन को आ घेरा।

और क्षण भर बाद ही सब कुछ मिट-मिटाकर सिर्फ एक घोर अन्धेरा ही बच रहा।

निरुपमा उसी तरह पाषाण प्रतिमा की भाँति खड़ी शून्य नेत्रों से क्षितिज की ओर निहारती रही।

कुछ देर बाद निशीथ ने कहा, "डाक्टर को जाने दो निरुपमा। जीवन पथ पर अकेला बढ़ने वाला मनुष्य ही शक्तिशाली है। यदि पथ पर चलते-चलते किसी समय भी तुम्हारे जीवन में गिरावट आई तो मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा।"

निशीथ की बात निरुपमा को ठीक सुनाई नहीं दी। वह आँखों में आँसू और हृदय में कसक भरे दूर तक फैले हुए समुद्र की तूफ़ानी लहरों को देखती रही।



जब राकेश जहाज पर चढ़ने लगा तो मन पर जाने कैसी उदासी छा गई। उसने हठात् ही निरुपमा के पास आकर कहा, "तुम चाहो तो मेरे साथ चल सकती हो।"

निरुपमा को विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा, "तुम्हारे काम में बाधा जो पड़ेगी।"

"बाधा नहीं पड़ेगी, यह बात तो मैं निश्चय से कह नहीं सकता।"

"फिर भी मुझे ले जाने को कह रहे हो?"

"मेरे साथ न जाना चाहो तो मैं जिद नहीं करूँगा। वहाँ तुम्हें सुख नहीं मिलेगा, तुम कल्पना के साथ यहीं रह सकती हो।"

"सुख नहीं मिलेगा, केवल यही भय दिखाकर मुझे छोड़ जाना चाहते हो। अच्छा, ऐसा ही सही। लेकिन विदा होने से पूर्व प्रतिज्ञा करके जाओ कि मुझे कभी नहीं बिसराओगे।"

राकेश ने एक बार निरुपमा की ओर देखा। उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। वह एक भी शब्द कहे बिना जहाज पर चढ़ गया।

आकाश में धीरे-धीरे बादल इकट्ठे होने लगे। रात को कुछ बूँदें पड़ी थीं और आज दोपहर से जोर की हवा चल रही थी।

निरुपमा को लगा जैसे वह पागल हो जायगी। आँसुओं के जिस बाँध को वह यत्न से हृदय में सँजोकर रखे हुए थी, दुर्दिन की इस विरह-वेला में वह अचानक ही टूट गया। उसके चारों ओर एक अथाह सूनापन उभड़ने लगा। जिसका न ओर न छोर। विराम नहीं, विश्राम नहीं। इतने बड़े दुर्भाग्य की बात उसके जीवन में दूसरी नहीं। उसे कुछ देर के लिए मानो कुछ होश नहीं रहा। वह अपलक नेत्रों से दूर जहाज पर खड़े हुए राकेश को देखती रही।

तभी जाने कहाँ से आकर विपुल राकेश के बराबर में खड़ा हो गया। उसने हँसकर राकेश से कहा, "मैंने अपना कार्यक्षेत्र बदल लिया है। मैं

भी तुम्हारे साथ चल रहा हूँ।"

किन्तु राकेश ने मानो सुना नहीं। वह क्षितिज तक जाती हुई समुद्र की विशाल लहरों को अपलक निहार रहा था।

जहाज चल पड़ा। अचेतन जड़ मूर्ति की तरह कुछ क्षण निश्चल रह कर निरुपमा अकस्मात् ही रो उठी। जितनी दूर भी उसकी दृष्टि जा सकती थी वह एकाग्र दृष्टि से चुपचाप देखती रही। आज एक भयंकर प्रलयकारी तूफान ने उसके मन को आ घेरा।

और क्षण भर बाद ही सब कुछ मिट-मिटाकर सिर्फ एक घोर अन्धेरा ही बच रहा।

निरुपमा उसी तरह पाषाण प्रतिमा की भाँति खड़ी शून्य नेत्रों से क्षितिज की ओर निहारती रही।

कुछ देर बाद निशीथ ने कहा, "डाक्टर को जाने दो निरुपमा। जीवन पथ पर अकेला बढ़ने वाला मनुष्य ही शक्तिशाली है। यदि पथ पर चलते-चलते किसी समय भी तुम्हारे जीवन में गिरावट आई तो मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा।"

निशीथ की बात निरुपमा को ठीक सुनाई नहीं दी। वह आँखों में आँसू और हृदय में कसक भरे दूर तक फैले हुए समुद्र की तूफानी लहरों को देखती रही।

